प्रकाशक—
गोर्धनदास जैन एण्ड सन्स,
आगरा

मूल्य १।)
१९५०

मुद्रक
विद्यायन्त्र प्रिंटिंग प्रेस, आगरा

परिचय

प्रस्तुत पुस्तक डा० सत्येन्द्र एम० ए० पी० एच० डी० के तीन नाटकों का संग्रह है। डा० सत्येन्द्र जहाँ उच्च कोटि के मर्मज्ञ विद्वान तथा आलोचक और कहानीकार हैं वहाँ ख्याति प्राप्त श्रेष्ठ नाटककार भी हैं। आप का 'मुक्ति यज्ञ' बुन्देलों की ऐतिहासिक वीरता को प्रस्तुत करता है तो 'कुणाल' अहिंसा के मर्म को। उधर विक्रम का 'आत्म मेध' भारतीय राजनीति में धर्मतः आत्म बलिदान के भाव का नवीन प्रयोग दिग्दर्शित कराता है। ये सभी नाटक अत्यन्त लोकप्रिय हुये हैं। इनमें कला का सौंदर्य पूर्णतः विकसित हुआ है। हिन्दी में सत्येन्द्र जी ही संभवतः पहले नाटककार हैं जिनके नाटक अभिनय के लिये लिखे गय हैं। वे पहले रंगमंच पर सफल हुए तब 'साहित्य' में सम्मिलित हुए और सम्मानित हुये।

सत्येन्द्र जी प्रथमतः अध्यापक हैं। उन्हें इन नाटकों में विद्यार्थियो का सदा ध्यान रहा है। राष्ट्र निर्माण में सत्येन्द्र जी ने अपने सशक्त नाटकों से बहुत सहयोग दिया है। यही कारण है कि उनके नाटकों में नैतिक शैथिल्य के प्रति असहिष्णुता मिलती है। आधुनिक युग में नये भावों के फैशन और आडम्बरों ने मानव के हृदय और मानस को आच्छादित कर रखा है। मानव जैसे स्वयं अपने बनाये बोझों के नीचे दब गया है और क्षुद्र हो गया है। कल्याण इसी में है कि इस आच्छादन को विदीर्ण कर मनुष्य का उद्धार किया जाय। इस संग्रह के तीनों नाटकों की पृष्ठ भूमि यही प्रतीत होती है।

प्रकाशक—

पहला नाटक है 'प्रायश्चित्त' यह साहित्य और इतिहास में प्रसिद्ध राजा भोज के वृत से संबंध रखता है। यह नाटक आधुनिक एकांकियों की प्रचलित टैकनीक पर लिखा गया है और उस टेकनीक का एक उत्कृष्ट उदाहरण है; शेष दो नाटकों में एकाँकियों की एक नई टेकनीक का प्रयोग किया गया है। इन दोनों नाटकों में समाज का व्यंग चित्रण है अतः ओज और तीखापन मिलता है। "वसंत" शीर्षक एकांकी में ओज विशेष है और साथ में प्रतीकात्मकता भी। 'वसंत' में सूखे वृक्ष का दर्शन समाज की जर्जर अवस्था का द्योतक है। सम्पूर्ण नाटक में उन स्थितियों को उभार कर दिखाया गया है जिन पर समाज को जर्जर करने का उत्तरदायित्व है—शुभ शक्तियाँ उनसे संघर्ष करती हैं और उन्हें सन्मार्ग पर लाती हैं तभी वह सूखा वृक्ष हरा हो जाता है। "मानव-उद्धार" नाटक इस शैली का एक श्रेष्ठ उदाहरण है—इस नाटक का 'ब्रह्मचारी' विश्व के समस्त मिथ्याचार के विरुद्ध शक्ति संग्रह करने वाले भावी मानव का एक संकेत है। नाटककार ने वर्ण और धर्म से ऊपर 'मानवता' का उत्कर्ष दिखाया है।

इन नाटकों में इन गुणों के अतिरिक्त एक विशेषता यह भी है कि निःसंकोच से रंगमंच पर खेले जा सकते हैं और स्त्री बच्चों में क्षोभ पैदा करने वाली कोई भी बात इन में नहीं मिलती। स्वस्थ मानस का विमल उद्रेक इन में है।

इन नाटकों को प्रस्तुत करते हुए मुझे हर्ष है। आज के राष्ट्र निर्माण में ये भावी नागरिकों की भाव भूमि को उन्नत पवित्र और दृढ़ करने में अवश्य ही सहायक होंगे।

इन्द्रचन्द्र जैन 'सारङ्ग'

प्रायश्चित

[यह एकांकी भोज प्रबन्ध के आरम्भ में दिये हुये कथानक के आधार पर लिखा गया है। भोज प्रबन्ध के कथानक को सत्तेप में यों दिया जा सकता है। सिंधुल ने अपने पुत्र भोज को अपने छोटे भाई मुंज की गोद में बिठाकर मुंज का राजाभिषेक कर दिया। मुंजयोग्यता पूर्वक शासन करने लगा। एक दिन ब्राह्मण ज्योतिषी आया। उसने भोज का जन्म-पत्र देखा और भविष्यवाणी की कि यह भारत के एक विशाल क्षेत्र का शासक होगा। मुंज को यह बात खटकी। उसने गौड़ाधिपति वत्सराज को आज्ञा दी कि वह आज ही भोज का वध कर डाले। वत्सराज भोज को महामाया के मन्दिर में ले गया। वहाँ भोज ने अपने शरीर के रक्त से वट पत्र पर एक श्लोक लिखकर मुंज के लिये दिया और अपने बलिदान के लिये प्रस्तुत हुआ। वत्सराज का हृदय डोल गया उसने भोज को छिपा लिया तथा एक नकली सिर बनाकर मुंज के पास पहुंचा दिया और वह पत्र भी। पत्र पढ़ते ही मुंज को ज्ञान हुआ और वह पश्चाताप करने लगा। ब्राह्मणों से अपने पाप की व्यवस्था ली तो उन्होंने जीवित जल जाने का विधान दिया। सिंधुल के प्रधान मंत्री बुद्धिसागर को राजा की इस अवस्था से दुःख हुआ। यद्यपि वह मुंज से असंतुष्ट भी था। वत्सराज ने भोज का सारा रहस्य बुद्धिसागर को बता दिया। बुद्धिसागर ने उसे कुछ काल

में समझाया । वत्सराज के चले जाने के थोड़ी देर उपरान्त एक कापालिक आया । राजा मुंज ने उससे प्रार्थना की कि वह भोज को जीवित करदे । कापालिक ने वचन दिया । श्मशान में होम सामग्री भेजी गई । भोज भी वहां पहुंच गया, सर्वत्र यह विख्यात हो गया कि भोज को कापालिक ने जीवित कर दिया । मुंज को बड़ी प्रसन्नता हुई । भोज को राज्य देकर और अपने पुत्र जयंत को उसके पास गद्दी पर बैठा कर मुंज ने वानप्रस्थ ले लिया ।

इस घटना में कितना ऐतिहासिक सत्य है निश्चय पूर्वक नहीं कहा जा सकता । एक इतिहासकार ने लिखा है कि मुंज ने अपने बड़े भाई सिंधुल को बन्दी बना रखा था और भोज को भी वह अपनी महत्वाकांक्षा के मार्ग से हटा देना चाहता था । किन्तु एक घटना से प्रभावित होकर उसने भोज को युवराज बना दिया । दूसरे इतिहासकार ने सूचित किया है कि मुंज ने तैलप से ६ लड़ाइयां लड़ीं । पांच में तो वह स्वयं विजयी हुआ और छठी में तैलप द्वारा ही बन्दी हुआ और उसी द्वारा ही वह मारा गया इसमें कोई सन्देह नहीं कि भोज मुंज का पुत्र नहीं था फिर भी भोज ने सिंहासन पाया यह ऐतिहासिक

ऐसा विदित हुआ कि यदि इस अंश को इस प्रकार बिलकुल एक नाटक मान कर चला जायगा तो पात्रों की पात्रता में यथार्थता का अभाव हो जायगा—अतः मैंने यह अनुभव किया कि वत्सराज ने स्वयं भोज का रहस्य उद्‌घाटित नहीं किया। बुद्धिसागर राज्य का अनन्य हितैषी था। उसने राज्य के संकटों को टालने के लिये कापालिक की शरण ली। मंत्रों में इस युग में विश्वास था। कापालिक ने भी उसे स्वीकार कर लिया। मंत्र बल से कापालिक ने जाना कि भोज का वध नहीं किया गया। भोज के जीवित वर्तमान रहने से भी अधिक कठिन समस्या यह थी कि उसे किस प्रकार उद्‌घाटित किया जाय। प्रायश्चित्त की पूर्णता के लिये नाटक में भोज का उद्‌घाटन उस समय कराया गया है जब मुंज अग्नि में एक पग प्रवेश कर गया है। भोज प्रबन्ध में ऐसी कोई कल्पना नहीं है। प्रायश्चित्त स्वय एक धर्म है। मानव की उन्नति और कल्याण का एक साधक है। जहां प्रायश्चित्त नही होता वहां मानव की दशा शेक्सपीयर के मेकबेथ जैसी हो जाती है। पतन के लिये कहीं बांध नहीं मिलता।

मनुष्य के कल्याण की अनेकों योजनाओं में से भारत की योजना अहं के नाश की योजना है। मनुष्य के साम्य की परिस्थितियां कभी पूर्णता को नहीं पहुंच सकती।

साम्यवाद की आदर्श अवस्था भी किसी ऐसे युग की कल्पना नहीं कर सकती जिसमें भौगोलिक भेद नष्ट किये जा सकें। मनोवैज्ञानिक ज्ञान दो मस्तिष्कों की प्रतिक्रिया को कभी समान रूप से स्वयमेव—प्रकृततः भौतिक आधारो की व्यवस्था द्वारा एक समान प्रभावित होने के लिये विवश नहीं कर सकेगा' उन सबको समान सौन्दर्यशाली ही करा सकेगा। न सबको समान आकार प्रकार का। रंग का भेद भी क्या विज्ञान के द्वारा नष्ट किया जा सकता है, और आज तो

विज्ञान हमें ले जाकर रक्त के कारण जाति भेद पर भी विश्वास करने के लिये कह रहा है। साम्यवादी शासन के अगुआ रूस ने विविध संस्कृतियों का भेद स्वीकार किया है, स्वीकार ही नहीं किया उनकी सुरक्षा का भी प्रयत्न किया है। स्पष्टतः इसके पीछे यह मान्यता होनी चाहिये कि संस्कृतियाँ अपनी निजी सत्ता रखती हैं और उनके भेदों को दूर नहीं करना चाहिये— जब ऐसा है तब तो मानव के भेदों का कहीं अन्त नहीं दीखता, "हरि अनन्त हरि कथा अनन्त"। साम्यवाद जिस शोषण का अन्त करना चाहता है, वह केवल आर्थिक शोषण है। ऐसी दशा में आर्थिक साम्य के बाद न जाने कितना और मानव के लिये मानव को करना पड़ जायगा। इस दशा में यह प्रतीत होता है कि मानव का कल्याण बाहर कम अन्तर अधिक है। मानव जितने अत्याचारों से पीड़ित है उनमें अर्थ सम्बन्धी अत्याचार एक है। यह भयानक इसलिये है कि मानव उसे झेलता हुआ चला जाता है। क्षय रोग की भांति यह मानव को ग्रस्त कर लेता है। और एक नहीं, सम्पूर्ण समाज उसका शिकार बन जाता है। पर नीचता और दानवता में इस अत्याचार के अतिरिक्त भी अनेक अत्याचार हैं। इन सब का मूल केन्द्र मानसिक व्यापार है।

स्थान—महामाया के मन्दिर का वाहिरान्त।

मन्दिर बांयी ओर है। उसका एक द्वार रंग मंच पर खुलता है, पर दोनों ओर शोणित के थापे लगे हुये हैं। द्वार खुला है, भीतर का भाग दिखलाई नहीं पड़ता, द्वार के दोनों ओर दो सिंह मूर्तियां बनी हुई हैं। कुछ दूरी पर एक चिता बन रही है। कुछ दूर रंगमंच के दायीं ओर एक नदी वह रही है, वहीं एक यज्ञ कुण्ड है, जिसकी एक ओर एक शव पड़ा है। दो चार खोपड़ियों के खप्पर जहां तहां पड़े हैं। कुछ पत्तलों में विविध होम सामग्रियां रखी हुई हैं। समस्त वातावरण एक अवसाद से युक्त है। यज्ञ कुण्ड में एक दो समिधायें जल रही हैं। उनके प्रकाश से रंगमच का एक कोना लाल रंग से प्रकाशित हो उठता है। महामाया के मन्दिर में एक दीपक टिमटिमाता दिखाई पड़ता है। संध्या का समय है, सूर्य अस्त हो चुका है, उसकी सांध्य-लालिमा से समस्त आकाश रक्त रंजित हो रहा है।

कापालिक का प्रवेश, साथ में बुद्धिसागर।
[कापालिक का प्रवेश करते ही दिशाओं में एक कोलाहल सा होता है। घन-गर्जना सी होती है, कुछ डमरू ध्वनि, एक वीणा के गिरने की-सी चीत्कार फिर विकट हुं हुं हुं के घन घोष के बाद एक दम निस्तब्धता…]

कापालिक—प्राणदान….. [अट्टहास करता है] ठहरो [कापालिक का स्वर मधुर हो उठता है] बुद्धि-सागर! तुम चाहते हो मैं प्राणों का खेल खेलूं।

बुद्धिसागर—महायोगिन! केवल उत्तराधिकार का प्रश्न नहीं पृथ्वीवल्लभ वाक्पतिराज मुंज के पश्चात् प्रजा और

निर्माण में रखी कच्ची नींव को नहीं देख पाया। उसकी महानता के तत्वों में एक आंतरिक विक्षोभ था। वह यों प्रकट हो गया। अच्छा हुआ, मुंज को अपने अंतर की दुर्बलता का पता लग गया, अब वह और भी महान हो जायगा—तपा हुआ सोना। चलूं मुहुर्त आरहा है साधना करूं।

[अपने स्थान पर जाता है। शव के आसन पर बैठता है। अग्नि प्रज्वलित होती है। एक दम निस्तब्धता--फिर एक तीव्र प्रकाश। कापालिक अनायास अपने आसन से उठ बैठता है और पास पड़े डमरू में एक हाथ मारता है। घन गर्जना सी वह ध्वनि आकाश में व्याप्त हो जाती है, अंधकार गहन होता है, कुण्ड की अग्नि फिर धधकती है। अपने आसन से उठकर आगे आते हुए—]

कापालिक—[उग्र पर गम्भीर स्वर मे हुं, हुँ · आओ। आओ।

[एक छाया का प्रवेश। छाया कापालिक को प्रणाम करती है]

कापालिक—वत्सराज, तुम आगये।

छाया—मैं वत्सराज ही हूँ भगवन्! न जाने किस आकर्षण से खिंचा हुआ इस भयानक भूमि मे चला आया हूँ।

कापालिक—मैंने बुलाया है तुम्हे वत्सराज! मन्त्रबल से मुझे विदित हुआ अभी, वत्सराज, कि तुमने भोज को मारा नहीं है।

वत्सराज—यथार्थ है भगवन्। मैं राजाज्ञा का पालन नहीं कर सका। भोज की प्रतिमा ने मेरे तेज को परास्त कर

दिया। मेरा तो तेज झूठ ही था—उस पर अपनी कृपाण नहीं चला सका—नहीं चला सका।

कापालिक—पर, मुझे भोज चाहिए! वत्सराज! मैं उसे बुद्धि-सागर और मुंज को लौटा देना चाहता हूँ।

वत्सराज—देव! आपकी आज्ञा का उल्लंघन करने की सामर्थ्य प्रकृति की समस्त शक्ति में भी नहीं है। मैं तो मिट्टी का लौंदा हूँ। पर मैं अपनी ओर देखता हूँ…

कापालिक—वत्सराज! कभी कभी अपराध भी पुण्य हो जाता है। तुमने भोज को न मारकर राजकीय आज्ञा का उल्लंघन नहीं किया—मुंज का किया है। राजा कभी निरपराध के प्राणों की बलि नहीं करा सकता। और मुंज, बेचारा मुंज तुम्हें किसी को मारने के लिये कैसे बाध्य कर सकता था? न्याय की दृष्टि में मुंज दो दोषों से कलुषित हुआ है। निजी स्वार्थ के लिए उसने भोज की मृत्यु चाही और अपने निजी दुष्टाचार की पूर्ति के लिए राजकीय शक्ति का उपयोग किया। इसीलिए आज उसे घोर मर्मान्तक पीड़ा है, उसे प्रायश्चित्त करना पड़ रहा है। वह चिता उसे भस्म करने को प्रस्तुत हो रही है। आज मुंज, वह मुंज जो मृत्यु से खेला करता था; मृत्यु स्वयं जिससे त्रस्त थी; वह आज मृत्यु से परास्त होगया—और तुम वत्सराज—

वत्सराज—मैं…मैं…महायोगिन्! पातकी तो मैं भी हूँ। मैं मुंज का मित्र हूँ।

कापालिक—यदि तुम केवल मित्र ही होते! मुंज ने तुम्हें इस कार्य के लिए सहमत मित्र के नाते नहीं किया—

उसने राज्य दण्ड से तुम्हें त्रस्त किया—तुम्हारा अपराध आज मुंज के प्रायश्चित्त की तीव्रता में पुण्य बनेगा—तो तुम भोज को लाओगे। शीघ्र ही। मैं उसे यथासमय ही प्रगट करूंगा। मुंज का प्रायश्चित्त पूरा हो और वह सरस्वती-विलासी अपने यथार्थ स्वरूप को पहचान ले, पुनः वह मृत्यु-विजयी हो जाय, बस वही समय होगा—ठीक वही क्षण होगा जब भोज उद्घाटन होगा। समझे। जाओ। छिपाकर लाना—किसी को कानोंकान खबर न हो।

वत्सराज—जो आज्ञा !

[शीघ्रता से प्रस्थान]

[देवी के मंदिर का घंटा अनायास ही घनघोर ध्वनि से बज उठता है ! फिर कुछ मंद हो जाता है।]

कापालिक—[अट्टहास करके] धन्य हो देवी। जय-जय-जय महामाया ! यह सब तुम्हारी ही लीला है। [देवी के घंटे की मंद ध्वनि आ रही है—नेपथ्य में, "बेटा जयंत, ऐसा प्रतीत होता है कि हम मंदिर के पास आगये।"]

[जयंत के साथ सावित्री का प्रवेश]

जयंत—हाँ, माँ, वह सामने मंदिर है—इसी में दुष्ट वत्सराज—

सावित्री—रुको जयंत, तुम वीर पिता के पुत्र हो, पृथ्वीवल्लभ वाक्पतिराज मुंज के लाल हो। सावधान ! वाणी को विदूषित मत करो।

जयंत—मेरे हृदय में हाहाकार है-हाहाकार है-माँ। मेरा भाई भोज। मां मैं भी उस चिता में पिताजी के साथ भस्म हो जाऊंगा।

सावित्री—बेटा! मैं तो भोज की माँ हूँ। मेरे हृदय के हाहाकार को देखते हो। उसका एक उच्छ्वास भी ब्रह्मांड के अणु अणु को भस्म कर दे सकता है-बेटा! क्या उस-उस हाहाकार को मुक्त कर दूं—जलने दूं सृष्टि को और स्वयं भी जलकर तमाशा देखूं—पर जयंत वह तमाशा ही होगा। मेरा मातृत्व कुंठित हो जायगा। और सृष्टि का समस्त मातृत्व लज्जित हो जायगा।

जयंत—माँ; यह तेरा कैसा मातृत्व है? तू अवरोध मत कर, इस पिशाचनी सृष्टि को अपने हाहाकार के उस स्फुलिंग से भस्म करदे माँ! मेरा तो हृदय विद्रोह कर रहा है।

सावित्री—वत्स! एक स्त्री ने माता बनकर अपने मातृत्व को कलंकित कर डाला था। उसका अभिसाप आज भी स्त्री के सिर पर मंडरा रहा है। उसे अपने पुत्र से भर्त्सना मिली थी। अणु, इस प्रकृति का अणु जब सृष्टि के शेष अणुओं के साथ संधावित होता है तभी अपनी सार्थकता रखता है, जब वह अपने को शेष से अलग कर अपनी अलग आवश्यकताएं खड़ी कर लेता है, अहंकार में फंस जाता है, वह सृष्टि में अशांति और विद्रोह का कारण बन जाता है। मेरा मातृत्व शेष प्रकृति के मातृत्व से भिन्न क्यों हो वत्स! इसी लिए मैं अपने अहं के हाहाकार को रोक रही हूँ।

उसने राज्य दण्ड से तुम्हें त्रस्त किया—तुम्हारा अपराध आज मुंज के प्रायश्चित्त की तीव्रता में पुण्य बनेगा—तो तुम भोज को लाओगे। शीघ्र ही। मैं उसे यथासमय ही प्रगट करूंगा। मुंज का प्रायश्चित्त पूरा हो और वह सरस्वती-विलासी अपने यथार्थ स्वरूप को पहचान ले, पुनः वह मृत्यु-विजयी हो जाय, बस वही समय होगा—ठीक वही क्षण होगा जब भोज उद्घाटन होगा। समझे। जाओ। छिपाकर लाना—किसी को कानोंकान खबर न हो।

वत्सराज—जो आज्ञा !

[शीघ्रता से प्रस्थान]

[देवी के मंदिर का घंटा अनायास ही घनघोर ध्वनि से बज उठता है ! फिर कुछ मंद हो जाता है।]

कापालिक—[अट्टहास करके] धन्य हो देवी। जय-जय-जय महामाया ! यह सब तुम्हारी ही लीला है। [देवी के घंटे की मंद ध्वनि आ रही है—नेपथ्य में, "बेटा जयंत, ऐसा प्रतीत होता है कि हम मंदिर के पास आगये।"]

[जयंत के साथ सावित्री का प्रवेश]

जयंत—हाँ, माँ, वह सामने मंदिर है—इसी में दुष्ट वत्सराज—

सावित्री—रुको जयंत, तुम वीर पिता के पुत्र हो, पृथ्वीवल्लभ वाकपतिराज मुंज के लाल हो। सावधान ! वाणी को विदुषित मत करो।

जयंत—मेरे हृदय में हाहाकार है-हाहाकार है-माँ। मेरा भाई भोज। मां मैं भी उस चिता में पिताजी के साथ भस्म हो जाऊंगा।

सावित्री—बेटा! मैं तो भोज की माँ हूँ। मेरे हृदय के हाहाकार को देखते हो। उसका एक उच्छ्वास भी ब्रह्मांड के अणु अणु को भस्म कर दे सकता है-बेटा! क्या उस-उस हाहाकार को मुक्त कर दूं—जलने दूं सृष्टि को और स्वयं भी जलकर तमाशा देखूं—पर जयंत वह तमाशा ही होगा। मेरा मातृत्व कुंठित हो जायगा। और सृष्टि का समस्त मातृत्व लज्जित हो जायगा।

जयंत—माँ; यह तेरा कैसा मातृत्व है? तू अवरोध मत कर, इस पिशाचनी सृष्टि को अपने हाहाकार के उस स्फुलिंग से भस्म करदे माँ! मेरा तो हृदय विद्रोह कर रहा है।

सावित्री—वत्स! एक स्त्री ने माता बनकर अपने मातृत्व को कलंकित कर डाला था। उसका अभिसाप आज भी स्त्री के सिर पर मंडरा रहा है। उसे अपने पुत्र से भर्त्सना मिली थी। अणु, इस प्रकृति का अणु जब सृष्टि के शेष अणुओं के साथ संधावित होता है तभी अपनी सार्थकता रखता है, जब वह अपने को शेष से अलग कर अपनी अलग आवश्यकताएं खड़ी कर लेता है, अहंकार में फंस जाता है, वह सृष्टि में अशांति और विद्रोह का कारण बन जाता है। मेरा मातृत्व शेष प्रकृति के मातृत्व से भिन्न क्यों हो वत्स! इसी लिए मैं अपने अहं के हाहाकार को रोक रही हूँ।

जयंत—तुम्हारी ये बातें मैं नहीं समझ सकता माँ। मैं तो अपने को लेकर पैदा हुआ हूँ—अपनेपन पर पला हूँ, उसे त्याग कर मैं सृष्टि का कैसे हित कर सकता हूँ माँ। मुझे मेरा मित्र और भाई भोज चाहिए—और जिसने मुझसे उसे छीना है, मैं उससे उसे ही छीनना चाहता हूँ। माँ, मैं स्वयं भी उसके बिना नहीं रहना चाहता।

सावित्री—मृत्यु से भयभीत हो जयंत ! अच्छा सुनाओ तो सही भोज ने क्या लिख कर भेजा था ?

जयंत—बड़ी सुन्दर पंक्तियाँ थीं ! माँ !

अरे ! मानधाता को देखो, कहाँ गये वे कृत युग भूप,
कहाँ राम, रावण-संत्राता त्रेता के वे पुरुष अनूप,
भूप युधिष्ठिर द्वापर के वे अन्य महीपति भी तद्रूप,

सावित्री—तुम इन्हें सुन्दर कहते हो, जयन्त ! तुम कह सकते हो; मैं नहीं।

जयंत—क्यों माँ इन पंक्तियों ने पिताजी की आँखें खोल दीं जो सत्य उनकी सम्मोहित चेतना के नीचे दब गया था उसे उभार दिया। मेरे यशस्वी पिताजी तभी तो अपने पतन को जान सके। ये पंक्तियाँ भोज ने अपने हृदय के रक्त से लिखी थीं। माँ, वे पिताजी के हृदय को बेधती चली गईं।

सावित्री—बेटा, पिता के प्रति प्रतिहिंसा का भाव मत रखो। उन्होंने तुम्हारी कल्याण कामना—

जयंत—माँ-माँ यह क्या कहती हो—अः तो अच्छा होता मैं जन्म ही न लेता—पिताजी के अज्ञान का कारण मैं हूँ। यह क्षण दुर्भाग्य का क्षण था जब मैं पैदा हुआ।

सावित्री—शान्त हो बेटा! तुम दोष की परिभाषा में नहीं आते। तुम मोह के कारण भी नहीं जयंत। मोह तो प्रकृति में सहजात है। वह बल भी है और बलहीनता भी। जब वह अपने उचित स्थल पर नहीं रहता वह दुर्बलता बन जाता है।

जयंत—यह सब दार्शनिकता है माँ! वास्तविकता से दूर ले जा रही हो। मैं इस दानवी कृत्य की मूल प्रेरणा का केन्द्र बना हूँ—पिताजी से पूर्व मैं अपने को मिटा दूँगा, मां! और मैं कहता हूँ—तुम भी धधक उठो, धधक उठो। मेरा प्यारा भाई भोज मुझे बुला रहा है। वह, वह माँ, देखो वह महामाया का मंदिर। महा··· मा····या? यहीं इस सर्वभक्षिणी माँ के लिए मैं स्वेच्छा से अपने शरीर का रक्त तर्पण करूंगा—जाता हूँ, तुम मुझे रोकोगी—रोकोगी—

सावित्री—[हाथ पकड़ के जयन्त को रोकती हुई] जयंत। [गला रुंध जाता है] तुम्हीं मेरे भोज हो—तुम भी मृत्यु से यों भयभीत हो मुझे छोड़ जाना चाहते हो! क्या मुझ वृद्धा को तुम विवश करके मृत्यु से हराना चाहते हो—रुको! मैंने—देखो मेरे हृदय का बाँध टूटना चाहता है—तुम उसे ठोकर से तोड़ना चाहते हो। क्या तुम यहाँ एक साथ कई चितायें

[जयंत हाथ छुड़ा कर मन्दिर की ओर भागता है "भोज भाई, आया! मैं प्रतिकार करूंगा। प्रतिकार"]

सावित्री—यह प्रतिकार रोको, जयंत। अरे प्रकृति के मातृत्व को क्यों पिशाचों को जन्म देने वाला बना देना चाहते हो! रुको रुको जयंत—स्त्री के पीड़ित मातृत्व

को गौरव की वस्तु बनने दो वत्स ! सृष्टि में सौन्दर्य और सुख की जननी बनने दो, ओह भोज ! भोज ! यह क्या हो रहा है ? क्या मैं रो पड़ूं—मुंज ! क्या तुम्हारा प्रायश्चित्त होना ही चाहिये ? मुंज तुमने क्या कर डाला ! जयंत, ओ जयंत ! भोज के प्राणों का प्रतिकार क्या प्राणों को विगलित करके होगा ! यह मार्ग ही गलत है। नहीं तो मैं भी क्षत्राणी हूँ जयंत, तलवार उठाकर एक नहीं सौ को मृत्यु के घाट उतार सकती हूँ। रुको—

[जयंत रुकता है—रथ फिर मन्दिर में घुस जाता है—मन्दिर का घण्टा घनघनाने लगता है—]

बुद्धिसागर का प्रवेश—

बुद्धिसागर—ऐं, यह देवी का घण्टा इस भयानकता से बज रहा है—वह कौन—ओ महाराज्ञी......

सावित्री—म...हा...राज्ञी...क्या कहते हो बुद्धिसागर ? रुको, मत, देवी के मन्दिर में चलो। जयंत विक्षिप्त हो उठा है। भोज गया, जयंत भी जाना चाहता है, बुद्धिसागर कितना समझाया—पर......न...चलो, चलो।

बुद्धिसागर—चलो माता—यह अनिष्ट तो रोकना ही होगा।

[दोनों तीव्र गति से मन्दिर में जाते हैं]

कापालिक— [अट्टहास करता है] अरे मानव !

[वत्सराज और भोज का प्रवेश]

वत्सराज—भोज ! उधर वह मन्दिर है, वह पास यह चिता है जिसमें तुम्हारे चाचा प्रायश्चित्त के लिये जीवित जलेंगे--आओ--उधर वह महायोगी हैं, चुपचाप चले आओ।

भोज—क्या इसी प्रायश्चित्त का अवसर पाने के लिए ही चाचा जी ने मेरे वध की आज्ञा दी थी। -निस्संदेह मेरे वध से कहीं अधिक महान उनका यह प्रायश्चित्त है मेरा वध उनकी एक भूल कही जाएगी और यह प्रायश्चित्त उनका गौरव बनेगा। वत्सराज, इस दृष्टांत से मनुष्य प्रायश्चित के लिए ही पाप न करने लग जाएं।

वत्सराज—चुप भोज ! निःशब्द चले आओ। न प्रायश्चित्त, न पाप—एक का भी मूल्य नहीं है—मूल्य दोनों की जड़ में प्रवृति का है।

भोज—पर मैं कहता हूँ, मित्रवर ? प्रायश्चित्त का यह विधान पाप को प्रोत्साहन तो दे ही सकता है।

वत्सराज—प्रायश्चित्त को पहले मानकर जो पाप किया जायगा युवराज ! वह प्रायश्चित्त भी पाप का एक अंग हो जायगा। पाप की पूर्व कल्पना में प्रायश्चित्त भी सम्मिलित हो जायगा। गंदले जल से गँदगी साफ नहीं हो सकती।

भोज—फिर प्रायश्चित्त—

वत्स—फिर, प्रायश्चित्त मनुष्य की मुक्ति का साधन है, अज्ञान के विनाश का साधन है। अपरिकल्पित भूल के मार्जन के लिए प्रायश्चित्त न रहे तो मानव केवल दुर्बलताओं का ही प्रतीक बन कर रह जाएगा। पर देखो—वह योगिराज हैं।

[दोनों कापालिक के पास जाकर प्रणाम करते है ।]

कापालिक—भोज अभी तुम मृतक हो। भूमि पर लेट जाओ। आज वत्सराज का यश मैं लूंगा। तुम्हें प्राण दिये हैं वत्सराज ने, पर संसार कहेगा कापालिक ने भोज को जीवित कर दिया। [अट्टहास] उसे जीवित कर दिया जो कभी मरा न था, इसी बिडम्बना का नाम संसार है। महामाया इस भाँति ही अमिथ्या-चारी को मिथ्या में लिप्त कर देती है। उसके मिथ्या संसार की भूलभुलैयों में से यथार्थ कल्याण का दर्शन करने वाले को अपने सत्य की रक्षा पर सचेष्ट रहना पड़ता है। सत्य का मार्ग इसलिये बाँका है। अच्छा लेट गये भोज !......वत्सराज !

वत्सराज—तो मुझे अब आज्ञा है महायोगिन—हम जड़ता ग्रस्त जीवों को यदि यह श्मशान ज्ञान सदा बना रहे तो कितना कल्याण हो।

[प्रणाम करता है—कुछ दूर चलता है कि अपने चार पार्षदों के साथ मुंज प्रवेश करता है—वत्सराज ठिठक जाता है]

मुंज—[अपने पार्षदों से] वह देवी का मन्दिर है—वह मंदिर जिसमें प्यारा भोज किसी मुंज की आज्ञा से वध किया गया। जिसमें वह भोज मारा गया जिसने अपनी प्रतिभा से उस प्रतापशाली महा पराक्रमी मुंज को बिना पराक्रम के ही परास्त कर डाला था। मुंज का वह अभागा क्षण ! उसके देदीप्यमान यश-सूर्य में कलंक के समान अब युग युग तक वह क्षण अमर रहेगा ! वह पास में चिता है—मुंज के कदा-

कार पापस्तूप के पास उज्ज्वल ज्ञान के प्रतीह सी मानो परास्त हुआ मुंज वहां काठ बन कर पड़ा हुआ हो और उसकी छूँछ अब यहाँ जलाई जाती हो। कायर मुंज! तेरे शरीर के अणु-अणु में कहीं यह दुर्विपाक व्याप्त था। तेरी प्रतिभा, तेरी महानता तेरा गौरव, तेरा कलाविकास आज स्वयं तुझे एक आडम्बर और विडम्बना प्रतीत होते हैं। और उनकी यथार्थ कालिमा की महानता को यह छोटी सी चिता अपने अनन्त प्रकाश से युगों तक प्रकट करती रहेगी।

वत्सराज—[आगे बढ़कर] महाराज की जय हो।

मुंज—कौन वत्सराज? आज भी जय बोलते हो। नहीं, बोलो, अवश्य जय बोलो। वत्सराज—मुंज आज निर्भय अग्निपथ से भोज के पास जायगा। मुंज ने भय नहीं जाना, विवशता नहीं जानी, उसने आनन्द के उत्स को कभी सूखने नहीं दिया।

वत्सराज—यथार्थ है पृथ्वीवल्लभ, आपकी यशःश्री से आज दिगदिगन्त सनाथ हैं। वाक्पति-राज, सरस्वती आपका कण्ठहार है। आप सामर्थ्यवान हैं नाथ! मेरी प्रार्थना है भगवन—

मुंज—वह क्या है, मन्त्रिवर!

वत्सराज—मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि आप दूसरी भूल करने जा रहे हैं। अपराध क्षमा हो, पहली भूल मार्जन का तो यह अवसर भी मिला, पर यह भूल तो सदा भूल ही बनी रहेगी।

मुंज—वत्सराज ! भूल का मार्जन भूल है, भूल का मार्जन क्या कभी हो सकता है ? मेरी पहली भूल मेरे भयानक अपराध की भांति जगत में विख्यात रहेगी। मुझे उसे सदा अपनी भूल मानना होगा—मैं उस भूल का मार्जन करने नहीं जा रहा हूँ। मनुष्य का प्रत्येक कृत्य समय के क्षणों से सम्बद्ध है। भूल का जिस क्षण से सम्बन्ध है जब वह नहीं लौटाया जा सकता तब उसका मार्जन कैसे हो सकता है ? वत्सराज !

वत्सराज—तो यह प्रायश्चित्त ?

मुंज—मेरी भूल ने मेरी आत्मा को कुण्ठित कर दिया था, आत्मा मृत हो चली थी, यह प्रायश्चित्त उसे उबारने का प्रयत्न है—यह वह प्रयत्न है जो मुझे कायरता में वीरता का मार्ग दिखाता है।

वत्सराज—एक प्राण गया उसके लिए दूसरे प्राण का बलिदान।

मुंज—वत्सराज ! यह बलिदान नहीं, राज्यमद के लिये अंकुश है। राजा सर्व शक्तिमान बनकर भी न्याय की मर्यादा का उल्लंघन न करे, यह व्यवस्था सदैव से है और मैं भी उसका आदर करता हूँ। मुंज को प्राणों का भय कभी नहीं रहा—जो किंचित कायरता थी वह भी भोज के उस अन्तिम श्लोक ने दूर करदी और आज मैं उतने ही आत्म-गौरव से इस अग्नि को अपना शरीर सौंपूंगा, जितने आत्म-गौरव से मैं सिंहासनासीन हुआ था। मुझे अब मत रोको वत्सराज !

[सावित्री और बुद्धिसागर का प्रवेश—देवी के मन्दिर से बाहर आते हैं।]

सावित्री—मुंज, तुम्हें रुकना होगा—अपने लिये नहीं, उस उत्तरदायित्व के लिये जो तुम्हारे बड़े भाई ने तुम्हारे सिर पर रक्खा है। यह क्या बच्चों का खेल कर रहे हो।

मुंज—भाभी! भा...भी! मुंज ने अन्त में अपने को उत्तर-दायित्व के अयोग्य सिद्ध कर दिया, भाभी! वह देखो वह देखो......वह कौन भाई...... महाराज! निश्चय ही मैं अपराधी हूँ भाई। पर अपराध को मुंज अपराध मानता है और उस अपराध के लिये वह दण्ड सहेगा ही कौन...कौन......भोज...बेटे! मेरा मुख काला हो रहा है तुम हँस रहे हो...न... मुंज आज अपने शरीर के कण कण को अग्नि में स्वाहा कर डालेगा। बिना इसके आत्म-शुद्धि नहीं हो सकती......कहाँ गये भैया—बेटा.........मैं अभी आता हूँ...।

[जयन्त का प्रवेश]

जयंत—मैं भी आता हूँ भोज भैया।

मुंज—कौन जयन्त!

जयन्त—पिताजी देर कर रहे हैं आप ठहरिये। आप राज्य का भोग कीजिये! म भोज भैया के पास जाता हूँ।

मुंज—ओह जयन्त, इस कार्य के लिये तुम्हारा पिता ही बहुत है। तुम्हें अपने भाई का मोह है। मैं कर्तव्य के लिये अग्निदेव का आलिंगन करने जा रहा हूँ। एक मोह का प्रायश्चित्त कर रहा हूँ। तुम मोह में फँस कर जा रहे हो यह आत्म-घात है बेटे! मैं देर नहीं कर रहा—तुम्हें मेरे प्रायश्चित्त से संतोष होना चाहिये।

जयन्त—पर मेरा भैया, मेरा भोज।

सावित्री—आ बेटे— [जयन्त को अपनी भुजाओं में कस लेती है, वह विलख उठता है]

मुंज—चिता में आग प्रज्वलित करो! अब मुझे कोई रोकने का प्रयत्न मत करो। यह अग्नि है, मुंज उसमें अपना शरीर समर्पित कर रहा है। आप लोग आशीर्वाद दें कि यह मुंज पूर्ण आत्मशुद्ध हो सके—आज मैं जीवन के महत्तम क्षण को पा सका हूँ—मैंने आज ही यथार्थ में अपने पर और मृत्यु पर विजय पाई है। आज मेरी समस्त दुर्बलतायें क्षार क्षार होकर मेरे शरीर और अन्तःकरण से भूमिसात हो रही हैं। मेरे शरीर और मन के अणु २ जाग्रत हो उठे हैं—उनमें जैसे प्रकाश-पुंज भरा जा रहा है और कोने कोने का अन्धकार विलीन हुआ जा रहा है। ऐसे आत्म-प्रकाश के क्षण जीवन में धन्य हैं।

बुद्धिसागर—वाक्पतिराज मुंज की जय।

शेष सब—जय! जय!

बुद्धिसागर—मुंज आप धन्य हैं आप यथार्थ महान हैं।

मुंज—आदरणीय तपोनिधि— शान्त हो। मुंज एक उल्लास में भर रहा है—उसे अग्नि का एक-एक स्फुलिंग मधुर अमृतमय अप्सराओं का नृत्य प्रतीत हो रहा है। मुझे आज एक दैवी संगीत सुनाई पड़ रहा है। आज मैं भी सरस्वती के कितने निकट सा पहुँच गया हूँ। मैं अपनी आत्मशुद्धि के क्षणों को यों अवसाद के साथ नहीं बीतने दूंगा। मन्त्री ! संगीत हो, नृत्य हो।

वत्सराज—जो आज्ञा [संकेत करता है]

मुंज—जिसने कला के मर्म को समझा है देवी, जिसने सरस्वती का आशीर्वाद पाया है वह जीवन को जीवन समझता है। मृत्यु का भय उसे नहीं छूता—मुंज पृथ्वीवल्लभ था, आज वह आत्मवल्लभ भी हो उठा है। यह प्रायश्चित्त उसे एक पग आगे बढ़ा रहा है—आप लोग इस उन्नति पर आनन्द मनायें।

[आगे बढ़ता है। चिता के बिलकुल निकट पहुंच जाता है] अग्निदेव ! भारत ने तुम्हें देव माना है, वेदों ने तुम्हारी वन्दना की है। लोगों ने तुम्हारा रुद्र रूप ही समझा है, मेरे लिये तुम क्या हो ? वह मैं व्यक्त नहीं कर पा रहा और आपके एक विलक्षण स्वरूप की अनुभूति मुझे हो रही है। मैं आपको शतशः प्रणाम करता हूँ (एक पैर अग्नि में बढ़ा देता है) मन्त्री ! संगीत, नृत्य ! आजीवन मुंज जिस घूँट को पीता रहा है, अन्त समय भी वह उसे छोड़ेगा नहीं।

[नेपथ्य में संगीत की एक मधुर ध्वनि]

सुन्दर-शिव-सत्य, यह क्षण सत्यं-शिव-सुन्दर मे भी महान् हो उठा है—मैं आप सब को प्रणाम करता हूँ।

[नर्तकियों का प्रवेश—वे नृत्य की मुद्रा में आती हैं]

ओह ! यह जीवन है, अग्नि भी जीवन है, नर्तकियों का सौन्दर्य भी जीवन है, यह संगीत भी जीवन है ! और नृत्य होने दो और मेरा यह...यह दूसरा पग इस विश्व-जीवन में प्रवेश करता है—

[अनायास डमरू ध्वनि। कापालिक का प्रवेश]

कापालिक—ठहरो ! मुंज ! तुम्हारा प्रायश्चित्त पूर्ण हुआ—और उसका प्रसाद भी लो।

मुंज—महायोगिन् ! आप...अपनी साधना से उठ कर आप—

कापालिक—मुंज ! लौटो ! लौटो ! तुम्हारी आत्मा शुद्ध हो गई। प्रायश्चित्त हो गया—और यह लो अपना भोज—भोज।

मुंज—मेरा भोज ! मेरा प्यारा भोज ! भोज ! ओह महायोगी ! सत्य, शिव, सुन्दर और यह

(मुंज अनल से हट आता है भोज दौड़कर आता है—और चरणों में गिर पड़ता है।)

जयन्त—[चीखता है] भैया भैया। (वह भी मुंज के पास पहुंच जाता है)

मुंज—नाचो (नृत्य आरम्भ हो उठता है)

प टा क्षे प

बसंत

(१)

[दृश्य खुलता है। एक सूखा पेड़, पत्तियाँ गिर रही हैं। उस पेड़ की छाया लम्बी पड़ रही है। नीचे रङ्ग-विरङ्गे खिले फूल वसन्त की अवाई में फूले नहीं समा रहे हैं।]

एक बालक—अरे! ये फूल खिल रहे हैं। वसन्त आरहा है, उसके स्वागत में इतनी यह तड़क भड़क !

[वृक्ष की ओर देखकर, कुछ उदास होता हुआ]

पर ··· पर ···यह वृक्ष कंकाल की भांति अपनी मलिन दीर्घ छाया इस कोने में डालता हुआ अब भी वसन्त के प्रेत सा खड़ा है।

[एक कदम पीछे हटकर]

उफ! उफ! इसने मेरा सारा कवित्व नष्ट कर दिया—फूलों को देखकर जो संगीत फूटना चाहता था वह अवरुद्ध हो गया—क्या वसंत नहीं आया ?

खिलो फूलो! क्या वसंत आगया ?

ऐ महावृक्ष! ऐ पत्र-पुष्प-हीन अभागे! क्या वसन्त नहीं आया ?

बताओ ! कोई बताओ ! मेरी द्विविधा दूर करो । बताओ ! वृक्षराज ! जर्जर वृक्षराज ! क्या तुम ऐसे शुष्क खड़े रहोगे ? क्या मेरी कविता सी कोंपल तुम में नहीं फूटेंगी ? क्या मेरे संगीत-सी कोकिल तुम्हारी इन हरी शाखाओं पर कूकेंगी नहीं ? क्या मेरी नई उमंग सी हरीतिमा तुम्हें नव-जीवन और नव-यौवन नहीं देगी ? बोलो, अरे क्या तुम अभी से बुड्ढे होगए क्या ? या अभी बसन्त नहीं आया ?

[दूर से किसी के गाने की
आवाज आ रही है]

सूख गए पत्ते डालों पर,
झंझा ने झकझोर दिया ।
ठूँठ खड़ा है मेरे जग में,
नव-जीवन से शून्य, पिया ॥
मधु बरसादे, रंग सरसादे, पचरँग साड़ी मुझे रँगादे,
गादे फाग सुहाग, पिया रे !

होली जलती है जलने दे,
लपट उठें ऊँची ऊँची ।
चित्रकार जग भर को रँगदे,
लाल लाल तेरी कूँची ॥
बँसुरी लादे, ढोल बजादे, मञ्जीरों की धुन गमकादे,
गादे फाग सुहाग, पिया रे !

[गीत पास आता प्रतीत हो रहा है ।
बालक कुछ विकल होता है ।]

बालक—यह गीत ! अरे, यह भी क्या गीत है ? मेरी विकलता बढ़ती जाती है। देखूँ तो, बसन्त की किसी और को खबर है या नहीं ?

[बालक धीरे धीरे चला जाता है। एक गड़रिया एक कुल्हाड़ी कंधे पर रखे, एक बकरी का रस्सा पकड़े गाता हुआ आता है।]

गादे फाग सुहाग, पिया रे ! गा ···· (एक दम चौंक कर) कौन है रे ? क्या इस वृक्ष पर किसी और की भी नजर है ? बड़ा बुरा जमाना है भाई ! अच्छे भले मनुष्य दूसरों की वस्तुओं पर मन ललचाते रहते हैं। इस वृक्ष के हरे हरे पत्ते हमारी बकरी के बच्चों ने खाये। इसकी लकड़ी मांगी है हमारी घरवाली ने। चूल्हा जलेगा इससे ! कल है बसन्त-पञ्चमी। केशरिया भात कैसे पकेगा ?

मेरा पके केसरिया भात—ऐ हाँ रे ! पके केसरिया भात।

[गाता जाता है और कुल्हाड़ी मारता है।]

[पर्दा गिरता है]

---

(२)

(एक वृद्ध का प्रवेश, सफेद लम्बी दाढ़ी, सफेद सर के बाल, साथ पाँच बलिष्ठ युवक)

वृद्ध—बसन्त आगया, तुम कहते हो धीरेश ?

धीरेश—हाँ महामना ! मैंने अभी कोकिल की कूक सुनी और समझा बसन्त आगया।

वृद्ध—कोकिल की कूक ! अभी से कूक कर कोकिल क्या कच्ची अमराइयों को सड़ा डालना चाहती है ? हुँ ! बसन्त आगया, क्या तुम कहते हो देवेन्द्र ?

देवेन्द्र—हाँ, गुरुवर ! अभी अभी तो रास्ते में खिले फूल दिखाई तो पड़े थे, बसन्त आ तो गया।

वृद्ध—खिले फूल ! अरे क्या ये लोगों को अपनी मोहक मुस्कान में भुला देना चाहते हैं ? फिर क्यों खिल पड़े हैं ये ? बसन्त आगया ? क्या तुम भी ऐसा ही समझते हो चन्द्र ?

चन्द्र—समझता तो हूँ देव ! मैंने देखा सूखे सूखे वृक्षों में नये नये कोपल निकल रहे थे।

वृद्ध—सूखे वृक्षों में नये कोपल ! (आश्चर्य से) क्या सच ? ओह ! नहीं धोखा, धोखा ! तुम बताओ, योद्धेय ! तुम बताओ क्या बसन्त आगया ?

योद्धेय—मुझे भी लगता तो है, पूज्यवर ! हरे हरे खेतों में फूली सरसों।

वृद्ध—(योद्धेय की ओर एकटक देखता हुआ) देखी है, तुमने देखी है फूली सरसों-फूली सरसों। वह प्यारी प्यारी पीली सरसों हरे खेतों में—

योद्धय—जी !

वृद्ध—उफ ! यह बड़ा अत्याचार है। बड़ा अत्याचार है ! न, भुलावा है। धोखा है ! तुम बताओ कृष्ण ? (रुक जाता है)

(एक किसान-जीर्ण शीर्ण अवस्था। साथ में रोता हुआ एक बालक)

किसान—(बालक को दपटता हुआ) चुप, चुप ! रोता है ! टेंटिया मसक दूंगा टेंटिया। रोटी लेगा, भूखा है भूखा है मरजा ! कम्बख्त ! अभी न जाने कितने दिन भूखा रहना पड़ेगा ! चला आ। (घसीटता हुआ लिये चला जाता है)

वृद्ध—ये ! ये ! कृष्ण ! यह देखो ! धीरेश ! तुम कहते थे कोकिल कूक रही थी—न—न (फिर रुक जाता है)

(दो सिपाही एक मजदूर को घसीटते लाते हैं)

मज़दूर—ठहरो, ठहरो।

एक सिपाही—ठहरो का बच्चा ! मिल में हड़ताल करायेगा, क्यों ?

मजदूर—मेरी स्त्री, मेरे बच्चे भूखे······

दूसरा—(उसका मुंह बन्दकर देता है) (उसे चिराता हुआ) मेरे स्त्री-मेरे बच्चे-अब याद आरहे हैं—चल चल।

(घसीटते ले जाते हैं)

वृद्ध—कृष्ण, कृष्ण—यह भी देखो, यह भी देखो, खिले फूल कहाँ है ?—देव ! (रुककर-चौंककर) अरे दय्या ! (एक ओर हट जाता है) एक डाक्टर का प्रवेश, पीछे एक दुबला पतला युवक घिघिआता आ रहा है।

युवक—डाक्टर ! डाक्टर ! खुदा के लिये मुझ पर रहम

कर-कोई दवा दे दे। ऐसी दवा, ऐसी दवा कि पीड़ा शान्त हो जाय और ताकत आये।

डाक्टर—दुत ! मुझे फुरसत नहीं।

युवक—डाक्टर ! मैं मर रहा हूँ ! आँखों के आगे अंधेरा आह ! आह ! डाक्टर।

डाक्टर—चरित्रहीन युवक ! बिना रुपया मैं दवा नहीं दे सकता। अर्जुन भीम की व्यभिचारिणी सन्तान अपने किये का फल भोग—

(डाक्टर फुरती से चला जाता है)

युवक—आत्मघात करूंगा। गले में फाँसी लगाकर मर जाऊंगा।

(चारो ओर देखता है, पागलोंसा)

वृद्ध—(उसे पकड़कर) न युवक ! ऐसा मत करो ! मैं दवा दूंगा। और देखो वसन्त आ रहा है। सब ठीक हो जायगा।

युवक—सब ठीक हो जायगा बाबा ! क्या वसन्त आ रहा है।

वृद्ध—आ रहा है ! बेटे ! वसन्त को आना ही होगा ! इन जीर्ण शीर्ण कंकालो में वह नये प्राण संजोने की तैयारी कर रहा है। तुम जाओ यहाँ से एक मील दूर मेरी कुटी है, वहां जाओ।

(युवक का प्रणाम का प्रस्थान)

वृद्ध—कृष्ण ! अभी नहीं आया वसन्त ! यह किसान, यह मजदूर। न, नहीं आया नहीं आया। पर उसे आना होगा

उसे लाओगे तुम भारत के वीर युवक! तुम तैयार हो? क्यों?

कृष्ण—हम सब तैयार हैं।

वृद्ध—तो जो मैंने कहा है उसे कर डालो। जाओ!

सब—जो आज्ञा।

(एक आगे, चार दो दो की कतार
में पीछे गाते हुये चले जाते हैं)

हम जीवन ज्योति जगायेंगे।
हम सब बसन्त शुभ लायेंगे॥
धरा धसक जायेगी हे शिव!
टूट पड़ेंगे तारे हे शिव!
बढ़कर भारत वीर विश्व में।
जब जय नाद गुंजायेंगे॥
मांस चढ़ेगा कङ्कालों पर।
फूल खिलेंगे अब डालों पर॥
भारत के ये वीर युवक जब।
मोहन — मन्त्र जगायेंगे॥

वृद्ध—आओ वीरो! वीरो—भारत के युवको! बसन्त तुम्ही लाओगे! तुम्ही लाओगे।

(प्रस्थान)

(पर्दा गिरता है।)

(नैपथ्य में वह गाना सुनाई पड़ रहा है, 'हम सब
बसन्त शुभ लायेंगे')

(एक धन कुबेर का विलास भवन)

(३)

(ब्रजचन्द्र और बालक का प्रवेश)

ब्रजचन्द्र—कहाँ थे रम्मो बाबू ?

रामदेव—पिताजी, बाहर टहलने चला गया था। सोचा, वसन्त आगया है। कुछ बाहर देख आऊं। कहीं फूल खिले होंगे, वृक्षों पर हरियाली होगी, मदमाती कोकिल—वही बाबूजी

मदमाती कोइलिया कूंके।
रस-प्रान प्रकृति में फूंके॥ मदमाती ०॥

ब्रजचन्द्र—तो देख आये ?

रामदेव—क्या देख आया, न कोकिल न कुछ। एक सूखा भयावना पत्र पुष्प विहीन वृक्ष कङ्काल—ठूठ, ठूठ! मेरा सारा कवित्व नष्ट कर दिया।

ब्रज०—अरे तुम भी कहां जड़ देखने चले गये थे! वसंत तो फूलों में दीखता है। यहां घर पर वसन्त की बहार—

(एक पिल्ला भीतर आ जाता है)

ब्रज०—पपी, पपी—आओ, पपी (अपनी वाणी में प्रेम उड़ेल कर) पपी! (गोद में उठाकर हाथ फेरते हुये) पपी, ये तुम्हारे रम्मो बाबू वसंत देखने गये थे—पर, है, ओ (एक थाप मारते हुये) उन्हें वसन्त की खबर ही नहीं पपी!

(खांसता-खांसता एक नौकर लाठी टेकता आता है)

नौकर—है ओ (थोड़ा हंसता है) पपी तो बाबूजी की गोद में है। बाबूजी बड़ा नटखट हो गया है। दूध ही नहीं पीता।

बालक—बासा दूध दिया होगा।

नौकर—दुहाई छोटे बाबू ! हाल का कढ़ा दिया है ।

व्रज—तुमसे इसे दूध तक नहीं पिलाया जाता । लाओ, हम पिलायेंगे । आज तो इसका डाँस होगा, क्यों पपी, हः हः है न ? जाओ दूध लाओ ।

(नौकर चला जाता है खांसता हुआ)

बालक—पपी का डाँस होगा ?

व्रज०—हां, आज यह पपी नाचेगा-नाचेगा, रम्मोबाबू ! अच्छा, रम्मोबाबू जरा कुर्सियां तो ठीक लगा दो (घड़ी देख कर) अभी तो वक्त है, बीस मिनट और हैं ।

(नौकर खांसता हुआ आता है, हाथ में दूध का गिलास, हाथ पर से दूध टपक रहा है)

नौकर—सरकार ! सरकार !!

(भीतर आकर उधर इशारा करता हुआ)

सरकार—वह ।

(पीछे एक दम लटा दुबला बाल बिखरे कोपीन लगी फटा चिथड़ा बदन पर—ऐसा किसान आता है)

व्रज—(चौंक कर) वहः अबे भगा इसे । यहाँ कहाँ चला आया है ?

नौकर—सरकार, नहीं भागता । कहता है ये दूध मुझे दो । मेरा बच्चा भूख से दम तोड़ रहा है ।

किसान—दो, मुझे दूध दो, मेरा बच्चा कई दिन से भूखा है ! मैं भी भूखा हूँ ।

व्रज०—चल, हट, दूध लेगा ! भिखारी कहीं का । तेरे बाप ने भी दूध पिया है ? दूध लेगा । चल, हट !

किसान—बाबूजी मैं भिखारी नहीं—भूखा हूँ।

व्रज—भूखा है तो जा, पास के मन्दिर में सदावर्त त
हुआ है। वहाँ जा। यहाँ क्या तेरे दादा का कुछ देना है ?

कसान—बाबूजी रहम ! जमींदार विरजो ने सब......

व्रज०—नौकर ! धक्का दे के निकाल दो, नालायक ह
बता दिया कि पास में सदावर्त बंटता है वहाँ जा।

(नौकर उसे निकाल देता है)

(व्रजचन्द्र का मुख कुछ गम्भीर हो जाता है दूध
को पिलाते हुये)

व्रज०—नौकर ! नौकर !!

नौकर—हुजूर !

व्रज०—(जेब से दो पैसे फेंकते हुये) ले उसे दो पैसे दे
भूखा है ! आज बसन्त के दिन किसी को सताना ठीक नहीं

(नौकर लेकर चला जाता है—फिर प्रवेश कर)

सरकार वे लोग आगये ?

व्रज०—आगये ! (प्रसन्न होता हुआ) आगये।
यहां (बालक से) कुर्सियां ! हां—ठीक है।

(कुछ लोग आते हैं, आदर से उन्हें बैठाया जाता है)

व्रज०—आज बसन्तोत्सव है। आप लोगों को बसन्त
बधाई। अरे रम्मो बाबू तब तक एक रिकार्ड ही बजाओ।

(बालक रिकार्ड चला देता है। नौकर पान,
लाता है। कुछ पेय भी आता है। एक एक

वृद्ध—देखो, अब नृत्य होने दो—

[बाजों की सुमधुर ध्वनि। पहले नैपथ्य में वह गीत
सुनाई पड़ता है—]

मांस चढ़ेगा कङ्कालों पर।
फूल खिलेंगे सब डालों पर॥

[सब चौंक पड़ते हैं। पर वह गाना बन्द हो जाता है।
नृत्य का वाद्य बजता रहता है। नृत्य और गान,
एक बालकदल द्वारा। एक दम प्रकाश मन्द,
पिस्तौल की ध्वनि। फिर तीव्र
प्रकाश। नृत्य रुक गया। सब
भड़भड़ा कर उठे]

पिस्तौल पकड़े एक मनुष्य—[कर्कश स्वर में] सब जहां के तहां। न कोई भागे। न हिले न डुले [अट्टहास करके] ओ हो! बसन्तोत्सव हो रहा है। आपके यहां व्रजचन्द्र जी बड़े जोरों का बसन्त आया है। आप बाहर निकल आइये। निकल आइये—

[कांपते हुए व्रजचन्द्र बाहर निकल आते हैं]

चलिये हमारे साथ चलिये चुपचाप, बिना हल्ला गुल्ला किये, हम आपके मित्र हैं।

[व्रजचन्द्र उनके साथ चल देते हैं, प्रकाश मन्द—
नैपथ्य में फिर वही गाना-हम जीवन ज्योति
जगायेंगे' एक दम प्रकाश-सब भागते
दिखाई पड़ते हैं। पर्दा गिरता है]

: ४ :

वही युवकों का दल-वही गाता हुआ—
हम जीवन ज्योति जगायेंगे।

[प्रस्थान]

: ५ :

[पर्दा उठता है]

(स्थान—एक मन्दिर)

"हम जीवन ज्योति जगायेंगे"

[यह गीत समाप्त होते होते कीर्त
ध्वनि आने लगती है]

हरे राम, हरे कृष्ण,
हरे कृष्ण, हरे हरे…

[ढोल मंजीर बज रहे हैं करताल भी।
उसी मजदूर का प्रवेश]

मजदूर —[दूर से ही] कन्हैया ? गोपाल ! मैंने क्या पा
किया था, क्या अपने भूखे पेट के लिये पैसे मांगना, भोजन
मांगना अपराध है ? दिन भर तो सारा कुटुम्ब मिल में काम
करे, फिर रोटी कहां से खांय ? तो फिर मुझे पुलिस के हाथों
क्यों पकड़वा दिया ? क्यों मेरी यह बेइज्जती की गई, बताओ
कृष्ण ! कन्हैया बताओ।

किसान—(प्रवेश करके) आह ? मेरा बालक मर गया। मेरा कलेजा कचोट रहा है। कन्हैया ? ऐसा जुल्म कब तक होगा पर तुम्हें क्या ? निष्ठुर ? यहां तुम्हें क्या कमी है। कहीं अकाल पड़ रहा है। कहीं मरी है, कहीं गरीबों को चूसा जा रहा है, पर इन ढप तालों के गान में तुम कहीं सुनते हो !

[अनायास सुनाई पड़ता है, कृष्ण भगवान की जय !' पूजापति का प्रवेश। साथ में नगर के मिल मालिक सेठ रामदास है। किसान और मजदूर एक ओर खड़े हो जाते हैं]

पूजापति—जो है सो सेठजी श्री सुकदेवजी महाराज पहिले ही कह गये हैं कि जब घोर कलिजुग बरतेगौ, तब जेई हाल होइगौ। सो जा समैं घोर कलिजुग है। वे के वेई सब लच्छिन मौजूद ऐं। पर तुम्हें का चिन्ता। श्री जदुनाथजी बड़े कृपालू हैं वे अवश्य करिके तुम्हारी विनती सुनंगे। तुम्हारे मिल के मजदूरन में सद्‌बुद्धी दिंगे और जाकी कहाऐ वैसें तो जगद्‌-गुरु गोस्वामी तुलसीदासजी ई कहि गये हैं।

"हानि लाभ जीवन मरन यश अपयश विधि हाथ"।

विधना नें ईं तो अमीर गरीब बनाये हैं। सब करमनु को खौटु है। जाके लैं कोई कहा करै। बस ! उनकी कृपा कटाक्ष को अवश्य करिकें जरूरत होइ है।

किसान—[आगे बढ़ कर] महाराज ! क्या यहाँ सदावर्त बंटता है।

पूजा०—अबे दूर हट ! पास चलता चला आ रहा है। देख रहे हो सेठजी ! जो का है सो घोर कलिजुग है कै नाहिं।

नेंक करिकैं तो धर्म कर्म को विचार नांय। सिर पे चढ़े आमतें। अबे हट! अब क्या दोपहर को सदावर्त रखा है?

किसान—महाराज! बहुत भूखा हूँ! भूख से तड़प-तड़प कर नन्हा सा लाल चल बसा! मैं भी......कुछ दया करो।

पूजा०—अरे तो एक बार कह दीनी जा; प्राण मति खाय, तेरे भाग्य कूं मैं कहां लै जाऊं। पिछले जनम में कछू धर्म संस्कार करे नांय—मिलै कहां ते? देख! जे है धर्म को प्रताप! सेठ रामदास को मुखड़ा कैसो दमकि रह्यो है।

दो चार भक्त—अबे बड़ा अहमक है! पुजारीजी ने एक बार कह दिया सुनता नहीं।

[उसे धक्का देना चाहते हैं कि एक आदमी बीच में आ कूदता है]

व: नवयुवक यौद्धेय—बस दूर रहो! ये ईश्वर के नाम पर व्यवसाय करने वालो दूर रहो। इन्हें भाग्य का पाठ पढ़ाकर तुम्हीं ने दीन और दुर्बल बना रखा है। ईश्वर का झूठा भय दिखाकर तुम्हीं ने पोच बना रखा है—नहीं तो इनके पास क्या नहीं है। आज तुम्हारे ये देवता इन्हीं के खून से मोटे हो रहे हैं।

[चारों ओर से हरे, हरे, शिव, शिव मन्दिर में ऐसी बात']

यौद्धेय—[डपट कर] सब एक दम चुप हो जाओ। पूजारीजी आप मेरे साथ चलिये-चलिये। नहीं चलियेगा—

[पिस्तौल निकाल कर उसकी नली के बल से उन्हें बाहर मंदिर ले जाता है—पिस्तौल देखते ही धीरे-धीरे सब भक्त खिसक जाते हैं।]

(प्रकाश मन्द हो जाता है और वही
गान फिर सुनाई पड़ता है)

[धरा धसक जायेगी हे शिव]

मजदूर—ऐ कन्हैया ! तुम मिल मालिकों के हो या मजदूरों के ? बताओ, दोनों के तुम एक-साथ नहीं हो सकते । मैं कहता हूँ नहीं हो सकते ।

किसान—(लड़खड़ा के गिरता हुआ) कन्हैया ! ऐसा करो जल्दी वसन्त आये ?

: ६ :

(स्थान—मार्ग)

(बालक रम्मो का प्रवेश, साथ में बुड्ढा)

बालक—नौकर ! मोहन ! पिताजी को वे कहाँ ले गये ? क्या करें ? कहाँ ढूंढे ?

बुड्ढा—(खांसते हुए) छोटे बाबू ! क्या बतायें, पुलिस ने भी कह दिया है । पर पुलिस क्या कुछ कर सकती है ?

बालक—पिताजी ! आपने किसी का क्या बिगाड़ा था । मोहन ! (रोता है) मोहन ! पिताजी ! मेरे पिताजी ओ…ह ।

(किसान का प्रवेश

किसान—(रोते हुए) बेटे ! मेरे लाडले ! बेटे ! तैंने किसी का क्या बिगाड़ा था ? तुझे मैं अन्न का एक किनका नहीं दिला

सका ? ओह तू भूख से तड़प-तड़प कर मर गया। बेटे आह आज सब जगह अकाल—

बुड्ढा—(किसान को देखकर चौंककर) अरे तुम!

किसान—(बुड्ढे को देख कर) अरे तुम राक्षस! तुही मेरे बच्चे को खा गया है। ला, ला, दूध ला! (उसका गला पकड़ता है) नहीं तो मार डालूँगा! मेरा बेटा!

(शिथिल होकर गिर पड़ता है)

रामो—हे भगवान! क्या यही पाप? पिताजी! तुमने अपने कुत्ते को देखा इस दरिद्र को नहीं। आह! अब कैसे होगा।

किसान—(फिर उठता है) मारूंगा, मार डालूंगा। जिसने मेरा बच्चा खाया है उसे खा जाऊंगा—

(बुड्ढा चिचियाता है, किसान उसपर चढ़ा बैठता है)

बालक—ओ-ओ-मैं क्या करूं भगवान्?

(सेठ रामदास का प्रवेश, फुर्ती से दोनों के पास पहुंच कर)

अरे! यह तो लाला ब्रजचन्द्र का नौकर है। (किसान की चुटिया पकड़कर खींचता हुआ) हट! हट!

किसान—खाऊंगा, खाऊंगा।

सेठ—अबे हट!

(एक तरफ गाँव के पटक देता है)

(मजदूर का प्रवेश)

मजदूर—ओह ! मेरी स्त्री ! मेरी प्यारी स्त्री प्रसव पीड़ा में मेरे पीछे मर गई । भगवान् ! हा ! भगवान् ! मेरा जगत शून्य हो गया । (रामदास को देख कर) ओह तुम, तुम ! तुम्हीं ने तो मेरी स्त्री को मार डाला है ।

सेठ—(घबड़ातासा हुआ) मैंने ! हे कृष्ण !

मजदूर—नहीं तो और किसने ? बता ! किसने मजदूरी न देकर मुझे भूखा रखा ? किसने मजदूरी मांगने पर सत्याग्रह का इल्जाम लगाकर पुलिस के हवाले किया ? किसने किया बता ? (अत्यंत भयानक रूप धारण कर लेता है)

सेठ...मैं मैं...

मजदूर—मेरी स्त्री गयी ! आह ! गयी-फिर धन के कीड़े तू क्यों जीवित है ? तू जीता हुआ न जाने कितनों के और प्राण लेगा-आह ! आज सब समाप्त करदूं-क्यों ?

बालक—ई···ई···(भाग जाता है)

(मजदूर सेठ पर झपटना चाहता है कि यौद्धेय बीच में आजाता है)

यौद्धय—बस, मजदूर ! प्राण लेकर भी तुम किसी के प्राणों की रक्षा नहीं कर सकते । हिंसा प्रवृत्ति ने ही आज यह दिन दिखाया है । बस, शान्त ! बसन्त आ रहा है । सब सृष्टि मनोरम हो जायगी । घबड़ाओ मत । सेठ रामदास जी आप हमारे साथ चलें । चले आवें चुपचाप । मजदूर ! तुम इस किसान और बुड्ढे को साथ लेकर आओ ।

(सब का प्रस्थान)

वही गीत-

हम जीवन-ज्योति जगायगे ।

: ७ :

(वही विलासी युवक–शीशा कंघा
हाथ में, गुनगुना रहा है)

समलिया से हम से नाँय बनी रे।

यह बुड्ढा कहता था मेरी कुटी पर जाओ, मैं अच्छा कर दूंगा। धूर्त। वाह ! अहमद मियाँ ! तुमने गोलियां क्या दी संजीवन बूटी दे दी। एक ही गोली का यह असर—

उफ ! आज तो वसन्तपञ्चमी–वह क्या ऐसी सूखी सूखी–बैरा ! बैरा। लाओ। वही लाओ।

(बाल संवारता हुआ)

(बैरा एक लोटा रख जाता है)

आह। मेरी प्यारी विजया–क्या खूब। (लोटा उठा कर पी जाता है) अः अब रङ्ग आवेगा।

मेरी कविता फूटना चाहती है—वह अपने सुनहले पंखों में रुपहले आकाश के सुरभि सिंचित लोक में से होकर अमरपुरी पहुँचेगी। वहां, वहां झिलमिल करने वाले फानूस, फाड़ उस हरी भरी वाटिका में वृक्षों पर लटके हैं।

उफ ! यह फीका फीका क्यों ?

(जरा भीतर जाकर अपने नौकर को
चीख लाता है)

हः हः हः ठीक !

बैरा—सरकार !

युवक—चुप ! थोड़ी देर को समझ ले कि तू औरत है, हाँ और जरा……

बैरा—हुजूर ! यह कैसे समझलूँ कि औरत हूँ, सरकार जब खासा मर्द हूँ।

युवक—फिश—देर मत कर, जब वोप हारकर भी समझते हैं कि जीता और गाँधी जीतकर भी समझते हैं कि हारा हूँ तो तुझ से इतना नहीं समझा जा सकता। बैठ जा यहाँ ! इस हाथ को यहाँ (कमर) रख, इसे यहाँ (सिर) रख, मुँह जरा उधर ! ठहर ! ठहर ! ऐसी रङ्गीली कविता होगी।

(लिखने बैठता है, नौकर ढीला बैठ जाता है)

अबे, अरे ! सब मज़ा किरकिरा किये देता है। तेरे हाथ जोड़ूँ जरा रुक जा। कविता आ रही है, आ रही है।

(पीछे से चन्द्र आकर कमरे में रखी सुराही को पटक देता है धड़ाम से आहट होती है)

युवक—आयँ ! (एक दम उछलकर नौकर से टकराता हुआ गिर पड़ता है)

एँ तुम !

चन्द्र—हाँ मैं !

युवक—क्या वसन्त आगया ?

चन्द्र—यहाँ तो अभी पतझड़ आया है। वसन्त आएगा बाबा जी के यहाँ।

युवक—बाबा जी के यहाँ। उस बुड्ढे के·····

चन्द्र—चुप ! आप चलेंगे नहीं बाबा जी के ?

युवक—जरा ठहरो !

चन्द्र—क्यों ?

युवक—मेरी कविता·····

चन्द्र—(बैरा की ओर संकेत करके) और यह क्या ?

युवक—यह, यह ! यह मेरी कविता की नायिका—

चन्द्र—दुत, पागल ! वसन्त आ रहा है और तुम नायिका के चक्कर में पड़े हो।

युवक—वसन्त आ रहा है तभी तो, जनाब हम युवक हैं, युवक जवानी की ऐसी बातें नहीं करेंगे, सुन्दर सुन्दरियों की कल्पना नहीं करेंगे, रोज़ेलिण्ड, पोर्शिया के ख्वाब नहीं देखेंगे—

युवक— [घिघियाता हुआ] च…ल…ता…हूँ…।

(पर्दा गिरता है)

: ८ :

[वही पाँच व्यक्तियों का दल]

हम जीवन ज्योति जगायेंगे।
हम सब वसन्त शुभ लायेंगे।
फूल खिलायेंगे ऊसर में।
कमल खिलेंगे सूखे सर में।
जब ये भारत वीर आन पर,
अड़ निज शीश चढ़ायेंगे।

(इनके पीछे रस्सी में बँधे चले आ रहे हैं कैदियों की भाँति ब्रजचन्द, पुजारी सेठ रामदास, युवक। पीछे मजदूर किसान। गाना चल रहा है।

अड़ा खड़ा हो अगर हिमाचल।
लहर रहा भीषण सागर-जल॥
इनको भी कर पान निडर हम,
निश्चय नवयुग लायेंगे।

युवक ! रहम करो ! जड़ को ही खोखला मत किए डालो। अच्छा कृष्ण ! इन्हें वहां खड़ा करो।

(सब यथा स्थान खड़े हो जाते हैं)

वृद्ध—वसन्त ! वसन्त ! ये तो आगए। वृक्ष के सूखे झड़े पत्ते तो आगए वसंत ! पर तुम क्यों नहीं आते। चौंक कर हाँ ! योद्धेय अभी एक तो रह ही गए।

योद्धेय—जी समझ गया। उन्हें अभी लाया, अभी लाया।

वृद्ध—हाँ जाओ-लाओ। (योद्धेय का प्रस्थान) अच्छा रुक रहा हूँ वसन्त ! उसके आने तक रुक रहा हूँ। तब तो तुम आओगे न ? जिसे तुमने इतने काल से त्याग दिया है। उस पर अब तो तुम्हें अनुकम्पा करनी ही पड़ेगी, देव ! बहुत हो चुका क्रोध ! देखो न (किसान की ओर संकेत कर के) इस अन्नदाता का खून सूख गया है—हड्डी भी सूखी जा रही हैं। कण्ठ में जो कोकिल बोलती थी; वह कहाँ गई—मर ही गई है, वह ! गालों पर जो फूल खिले थे, वे सूख कर झर गए। शरीर पर सरसों फूल रही थी, वह कहाँ गई और ये (मजदूर को देखकर) चमन बनाने वाले—देखो न इनका आशियां उजड़ा पड़ा है। कहाँ रह गया है जीवन और उसका आनन्द ? बहुत हुआ अब आओ, आओ वसन्त—

योद्धेय—जी ये रहे गाजी-ए-वक्त मौलाना इस्लाम अली। आप यहाँ पास ही कुछ मुसलमान भाइयों को भड़का रहे थे कि हिन्दू काफिर हैं। वे अपना राज चाहते हैं। तुम्हारी तलवारों ने जहां जीता है, क्या इन काफिरों की गुलामी करोगे। तुम पहले मुसलमान हो फिर हिन्दुस्तानी हो।

वृद्ध—आइये जनाव आली! आदाब अर्ज! आइये क्या आप खुदा की राह दिखाने वाले हैं? सच्ची राह दिखाओ। प्यारे वसंत को आ जाने दो। खून बहाकर, घृणा फैलाकर न हिन्दू न मुसलमान—कोई भी सुखी नहीं हो सकता। कृष्ण! इन्हें वहां खड़ा करदो।

[कृष्ण उन्हें खड़ा करता है]

वृद्ध—(प्रसन्न होता हुआ) अब आयेगा वसन्त। (पर्दे की ओर देखता हुआ उदास होकर) अरे! अब भी नहीं! कोई लक्षण नहीं। वसंत! वसंत! आओ! नहीं जानते हो क्या होगा? सारी धरा लाल हो जायगी। आकाश में खून के बबूले उछल-उछल इस सूर्य और चन्द्र को बुझा देंगे। तूफान आजायगा, प्रलय हो जायगी। अब भी समय है वसंत! वसंत! तू आ और इस महानाश से बचा इस सृष्टि को—उफ। नहीं आता। अच्छा कृष्ण! इन सब को शूलियों से जकड़ कर बाँध दो। सम्भव है इनके खुले रहने के कारण ही न आरहा हो।

[सब बांध दिये जाते हैं]

आओ! अब भी नहीं—(युवकों की ओर फिर कर) वीरो! तुम्हारी आवश्यकता है। तुम ब्रह्मचारी हो न?

सब—जी!

वृद्ध—तुम्हारे हृदय में वसंत को लाने की चाह बाढ़ मार रही है न ?

सब—जी !

वृद्ध—तुम धीर वीर बलवान हो आगे बढ़ो, अपनी एक हुँकार देकर कहो, वसंत आओ—

युवक—वसंत—

(एक दम मधुर वाद्य बजने लगता है एक सुरीला गाना नेपथ्य में)

वृद्ध—(हाथ के इशारे से युवकों को रोक देता है)

गाना

देव ! अब इनको प्रकाश दो कि ये तुम्हारा सन्देश सुन सकें। देव ! इन्हें हृदय में नेत्र दो कि ये नये युग को समझ सकें जिससे तुम यहाँ अटल होकर रह सको, धरा लाल न हो, मानव पशु न—न राक्षस, दानव न बने।

वसन्त—अच्छा ! (कटि से बांसुरी निकालकर बजाता है, ऊपर से फूल झड़ते है)

(बंधे हुये व्यक्ति चीख पड़ते हैं, 'अहा, हमें प्रकाश मिल गया।)

(बसन्त चला जाता है, पर बांसुरी बज रही हैं)

वृद्ध—कृष्ण ! खोलो, इनके बन्धन खोलो।

वृद्ध—व्रजचन्द्र !

व्रजचन्द्र—महामना ! मुझे प्रकाश मिल गया। मैं केवल किसान हूँ।

वृद्ध—पूजापति !

पूजा०—महाराज ! क्षमा। मैं समझ गया, मैं मनुष्य हूँ और उसका सेवक हूँ। और भाग्य नहा उद्योग सब कुछ है। संसार के सब मानवों का समान अधिकार है।

वृद्ध—सेठ रामदास !

सेठ—मैं समझ गया, मैं केवल मजदूर हूँ

वृद्ध—युवक।

युवक—आह ! मैं आज जान पाया हूँ कि मैं वह प
अग्नि हूँ जो जगत को शुद्ध करने आई है, शु
गंदा करने नहीं।

वृद्ध—मौलाना !

मौलाना—मैं समझ गया, जनाब ! सब एक खुदा
हैं। सगे भाई ! एक खून, एक प्राण ! तोबा। मैंने अब त
मैंढ़े लड़ाये।

वृद्ध—युवको तुम धन्य हो।

(बालक रामो का भागकर प्रवेश,
से लिपटता हुआ)

बालक—पिताजी ! आप यहां ? [सब को देखकर

(कोकिल बोलो

बालक—अहा, वसन्त ! क्या आप यहां वसन
आये पिता जी !

वृद्ध—बालक ! ये वसन्त देखने नहीं आये । वस
देखने आया है। प्यारे बालक ! तुम्हीं तो भारत के वस
आओ सब वसन्त का गान गायें।

वसन्त आया ! वसन्त आया !
झिलमिल तारे, पुष्प मनोहर।
सुन्दर जीवन मानव का कर॥
तू वसन्त आया, आया।
आया वसन्त आया॥

(पर्दा गिरता है

: १० :

(वृद्ध नौकर)

अरे, जैसे जमाना बदल गया हो। चारों ओर अद्भुत समां। अजीब बहार। सब कुछ बदल गया! [नेपथ्य में वही गान सुनाई पड़ता है]—

गा दे फाग सुहाग पिया रे—
कोकिल पंचम स्वर में बोली।
जीवन मदिरा उसने घोली॥

वृद्ध नौकर—अरे, वसन्त! वसन्त आ गया क्या?

(प्रस्थान, वह गाना हो रहा है)
(पर्दा उठता है)

: ११ :

(वही पहला स्थान। नीचे खिले फूल। वही पेड़। गड़रिया बकरी का रस्सा पकड़े हुए हाथ में कुल्हाड़ी लिये गा रहा है गा दे फाग सुहाग पिया रे, गा दे। कुल्हाड़ी मारता है, वह पेड़ में न लगकर जमीन में लगती है।)

अरे कुल्हाड़ी क्यों चूक गई? (पेड़ को देखकर) अरे, यह सूखा पेड़ एक दम कुल्हाड़ी मारते मारते हरा क्यों होगया! (कुछ सूखी शाखायें जमीन से उठाकर) ये भी कटी कटाई हरी हो गईं।

(नेपथ्य में 'वसन्त आया', गाना)

अरे ! ओहो ! वसन्त आगया । वसन्त आगया ।

रांधो केशरिया भात, महरिया रांधो ।

(उछलता है, चकरी भी उछलती है । गाना होता रहता है । वसन्त आया ।

भारत माता की जय !

भारत के नवयुवकों की जय !

मानव-उद्धार

दृश्य—१

(पर्दा खुलता है । यमुना तट की एक सुनसान सड़क । नैपथ्य में बहुत पीछे आरती के घंटे की आवाज के साथ समवेत अस्फुट मधुर स्वर में मनुष्यों की आरती गाने की आवाज आ रही है । पर्दे में से छन कर घूमती हुई आरती की झलक भी प्रतीत होती है । एक दीन हीन विचलित युवक विक्षिप्त सा प्रवेश करता है ।)

युवक—ओह, मैं क्या करूं, कहां जाऊँ ? यह इतनी विशाल नगरी, पर इस में मेरे लिये कोई काम नहीं । दिन भर खाक छान मारी, कोई बात भी नहीं पूछता, संध्या होने आगई । यमुना की आरती में भक्त गद्गद् हो रहे हैं । "वैष्णव जन तो तैंने कहिये जे पीर पराई जानें रे"—ये सभी तो वैष्णव हैं । पर ये अपनी पीड़ा के अतिरिक्त दूसरे की पीड़ा कब जान पाये हैं । जान पाते तो यों आनन्द में मग्न होकर उत्सव न मनाते—नाचते गाते न । इनकी भक्ति प्रवंचना है ।

[दो सूट-बूट धारी व्यक्तियों का विवाद करते हुये प्रवेश]

एक—जी हां, मैं कहता हूँ । धर्म प्रवंचना है । जनाब ! आप किस जमाने में रह रहे हैं । धर्म से मानव की आज तक एक

जय यमुने, जय जय यमुने,

माँ कालिंदजे ! आज भूमि पर भरदे सुख सपने।
स्वर्ण-शस्य की दिव्य विभा से रंग दे मधु झरने ॥
पतित तारिणी पावन करदे, माँ ! ये जन अपने ॥

जय यमुने........

(युवक मार्ग में खड़ा हो गया है, आरती समाप्त हो गई है। एक निस्तब्धता छागई है, एक मनुष्य हाथ में लुटिया लिये तिलक छापे लगाये, 'हरे कृष्ण हरे कृष्ण, हरे कृष्ण, राधे राधे' कहता हुआ आता है। युवक को देखकर।)

मनुष्य—अबे हट, रास्ता छोड़।

युवक—पंडित जी।

मनुष्य—पंडितजी की बछिया, बछिया का ताऊ, अबे मार्ग रोक कर खड़ा है और टोक रहा है। तो हां, बोल क्या है? पंडितजी को कोई न्यौता देने आया है? या पडित जी से कथा कहलवानी है? (उसकी ओर घूर कर) पंडितजी, पंडितजी, रास्ते में खड़े होगए, बोलने का शऊर नहीं। अबे तू क्या नौता देगा? बोल, बोल, क्या कहता है?

युवक—पंडित जी मैं कई दिन का भूखा हूँ।

मनुष्य—भूखा है, तू? तो जा डूब मर यमुना में। अरे यमुना मैया की कृपा से यहां कोई भी भूखा रह सकता है? जा डूब मर पापी कहीं का। मेरा धर्म भ्रष्ट करने को खड़ा होगया है रास्ता रोक कर! हरे कृष्ण; हरे कृष्ण......।

(युवक कुछ हट जाता है। पंडितजी थोड़े बच कर फुर्ती से 'राधे, राधे,' कहते हुए निकल जाते हैं। ऐसे ही कितने ही और व्यक्ति उसके पास होकर निकल जाते हैं, एक के धक्के से वह गिर पड़ता है और पड़ा रहता है। थोड़ी देर में एकान्त हो जाता है। एक दम निस्तब्धता छा जाती है। नैपथ्य में दूर पर से कहीं किसी व्यक्ति की आवाज आ रही है, वह साफ सुनायी पड़ रही है—)

" जो है सो भक्तजनो, सुनौ, कृष्ण महाराज जो हैं, सो बड़े कृपालु हैं, वे नन्द के छौना, ग्वाल बालन के प्यारे, गोपिनु की आंखिन के तारे, अहह श्याम हैं। जिन कौ रंग कमल जैसे बड़े बड़े आयताकार कानलों खिंचे भये उनके नेत्र, कैसे हैं वे श्यामसुन्दर, उन्होने दुर्योधन के पकवान छोड़े और विदुर के घर कौ सागु खायौ, वे दीनन की पुकार सदा ही सुने हैं। जबहिं पुकार करी है गज ने, नंगे पांव सिधाये। सो जो है सो का नाम कै श्री भगवान् आनन्द कन्द श्रीकृष्णचंद्र जी महाराज की लीला बड़ी विचित्र है। वे अपने भक्तन के काज कहा है जो नायं करि सकें। दीन दुखियानु के एक वे ही सहारे हैं; सो जो मन क्रम वचन करिके जो अपनौ सर्वस्व श्रीकृष्णचन्द्रजी महाराज के चरणारविंदन में न्यौछावर करि डारे हैं, वह सदा सुखी रहे हैं।"

युवक—[चीख कर] चुप रहो ! झूठ का प्रचार करने वालो, कहां है; तुम्हारा कृष्ण ! कृष्ण ! ओह अब तो जमुना में प्राण विसर्जन करके ही शान्ति मिलेगी। इस इतनी विशाल धर्म-प्राणा नगरी में······वैष्णवों के प्रधान क्षेत्र में······जहाँ इतनी विशाल धर्मशालाएँ हैं, वे भी अनगिनती, जहां कितने ही सदावर्त खुले हैं, भूखे और अपाहिजों को जहां घर घर

भगवान् विराजते हैं, वहां मेरे ऊपर करुणा करने वाला, वहां मुझे कुछ देर को भी आश्रय देने वाला, वहां मुझे एक रोटी का टुकड़ा देने वाला क्यों नहीं ! आह धर्म के पाखंड ने सभी करुणा लुप्त करदी है। दुःखी को समझने की शक्ति नहीं। रहने दो, तो निश्चय ही यहां मेरा ठिकाना नहीं रहा। चलूं। यमुने मैं आ रहा हूँ, तुम्हारे विकराल क्रोड़ में अपना मुंह छिपा कर चिरनिद्रा में मग्न हो जाने के लिये। यमुने ! माँ, वास्तविक धर्म तो तुम्हीं पालन करती हो। तुम्हारी शरण में आने वाले को तुम्हारा द्वार हर समय खुला रहता है। तो माँ·····

मां, तू अपनी करुण गोद में,

मुझको आज सुला ले।

मानव के दानव समूह से,

मुझको अलग बुला ले॥

[वह यह गुनगुनाता हुआ यमुनाजी में बढ़ता जाता है]

[दो बालचरों का प्रवेश]

अर्जुन -आखिर तुम क्या कहना चाहते हो ?

कृष्ण—मैं यही कहना चाहता हूँ कि बालचर संस्था इन नियम और प्रतिज्ञाओं में हमें बाँध कर केवल निज उन्नति का मार्ग बनाती हैं। राजनीति आदि से संस्था के नाते पृथक रहने का आदेश देकर वह हमें कर्त्तव्य के क्षेत्र से हटा देती है।

अर्जुन—भाई कृष्ण, यदि मैं यह कहूँ कि तुम बात को ठीक समझे नहीं, तो तुम मुझे क्षमा कर दोगे। राजनीति ही

कर्तव्य नहीं है। बालचर संस्था का कर्तव्य क्षेत्र अत्यन्त विशाल और अत्यन्त मानवीय है।

कृष्ण—कैसे ? यही तो मैं जानना चाहता हूँ।

अर्जुन—बालचर संस्था मानव के लिए, मानवमात्र के लिए है। वह मानवों के दलों के लिए नहीं, जो भी मानव है, वह फिर चाहे हिन्दू हो या मुसलमान; ईसाई पारसी कोई भी क्यों न हो, ब्राह्मण हो या शूद्र यहां तक कि अन्त्यज तक, और अंग्रेज हो या हिन्दुस्तानी, काला हो या गोरा, किसी भी दल या वर्ग का क्यों न हो, बालचर संस्था के सदस्य के लिए उनके प्रति कर्तव्य का क्षेत्र खुला हुआ है। यहां, मान लो यह यमुना है और कोई जर्मन डूबने लगे, तो हम उसे बचाने को दौड़ेंगे। सेवा निष्काम धर्म है।

कृष्ण—सचमुच ही कोई डूबने जा रहा है, देखो देखो।

अर्जुन—अरे कौन है ! [उस गीत को ध्वनि आ रही है] इतनी रात को कौन है भाई ? अरे आगे ढढा है, डूब जाओगे सुनो, [छपाक की आवाज] डूबा, चलो [अर्जुन एक दम भाग देता है और यमुना में कूद पड़ता है, कृष्ण भी सीटी बजाता हुआ उधर भागता है। इधर उधर से दो बालचर और आ जाते हैं]

॥ प टा क्षे प ॥

: २ :

(रात्रि का समय [वही सुनसान सड़क। स्टेज के ऊपर का सारा प्रकाश मन्द होगया है। नैपथ्य में से छन कर कुछ प्रकाश आ रहा है, किनारों से पदप्रकाश की मन्द किरणें स्टेज को हलके हलके प्रकाशित किये हुये हैं।)

(अर्जुन और कृष्ण उस मनुष्य को स्टेचर पर उठा कर लाते हैं। उसका उपचार करते हैं। पहले उलटा लटका देते हैं। उसके पेट का पानी निकाला जाता है, फिर आर्टीफिशल रेस्पीरेशन देते हैं।)

(परदा गिरता है, फिर तुरन्त उठ जाता है)

(वह मनुष्य अब स्वस्थ होगया है, उसके हाथ में एक कुलहड़ है, वह दूध पी चुका है। बल पाकर वह बात करने लगा है।)

मनुष्य—तुमने मुझे यमुना में से निकाला है, तुमने मुझे प्राणदान दिये हैं ? तुमने मुझे····

कृष्ण—आप परेशान न हो। अभी आप बहुत कमजोर हैं। कुछ और स्वस्थ होलें।

मनुष्य—क्यों स्वस्थ होलूं ? बताओ, किस लिए तुमने मुझे बचाया है ? क्या मेरे दुःखों की समाप्ति नहीं होपयी ? अरे, क्या तुम यहा चाहते हो कि मैं दुर्भाग्य और पीड़ाओं का शिकार बना रहूँ, और दिन दिन मानसिक और शरीरिक आग में, जीवन के ज्वालामुखी में जलता रहूँ।

अर्जुन—भाई।

मनुष्य—चुप रहो, चुप रहो, अरे नृशंस मनुष्यो तुम इसे उपकार समझते हो ? कहीं कहीं मनुष्य के प्राण बचाना भी

अपकार होता है, तुमने मुझे यमुना की सुखद गोद में से निकाल कर फिर जलती मही में पटक दिया है, वहीं मैं जीवित नहीं रहना चाहता, तुम स्वयं मुझे भूखों मार डालना चाहते हो? नहीं, यह नहीं होगा। मैं अपने आप अपनी हत्या करूंगा (वह दोनों हाथों से अपना गला दवाना चाहता है) यों मरूंगा मैं, तुम्हारे सामने मरूंगा मैं, अरे तुमको तो अपने अलावा सभी को मरते देख कर प्रसन्नता होती है ओ, (और जोर से गला दवाता है।)

अर्जुन—नहीं तुम ऐसा नहीं कर सकोगे।

मनुष्य नहीं कर सकूंगा? मैं तुम्हें मार कर तो मर सकूंगा। (एक पर खींचकर कुल्हड़ मारता है। दूसरे का जाकर गला दवा लेता है, वह ग ग करने लगता है) अब कहो; मैं तुम्हें भी मार कर मरूँगा, तुम समझते हो। तुमने मुझे वचा कर उपकार किया है। धूर्तो, मेरे हृदय की पीड़ा, मेरे हृदय की ज्वाला का भी तुम्हें कुछ ज्ञान है? उसकी आग में छटपटाने से तो एक दम अपने हाथों मृत्यु का आवाहन कर लेना कहीं सुखद है। मैं तुम्हारा कृतज्ञ नहीं हो सकता। तुमने मेरे साथ वदी की है।

[तब तक कृष्ण उसका हाथ पकड़कर अलग कर देता है। वह अलग हो जाता है। तब वह टूटे हुये वृक्ष की भांति गिरता हुआ सा अर्जुन का सहारा लेकर हताश हांफ उठता है, बैठे हुये दिल से कहता है] तो मुझे नहीं मरने दोगे। ओह, यह सब क्या है? हर स्थान पर मेरे लिए अड़चनें।

अर्जुन—देखो, तुम धैर्य धारण करो, कष्टों के आगे यों भहरा कर गिर-पड़ने से भलेमानस काम नहीं चलेगा। चलो हम तुम्हारे दुःख दूर करेंगे।

मनुष्य—[रुआंसा, अवरुद्ध कंठ से उसकी आवाज पतली होगयी है] तुम दुःख दूर करोगे। तुम जरा से बालक। जो स्वयं अपने रोटी कपड़े के लिए दूसरों पर निर्भर हैं। तुम दुःख दूर करोगे। तुमने अभी क्या देखा है ? और किन किन के दुःख दूर करोगे। यह सब पाखण्ड है तुम्हारा।

कृष्ण—मित्र उद्योग तो कर ही सकते हैं न ? और तुम जिस प्रकार प्राण हथेली पर लेकर यमुना में कूदे, क्यों नहीं अपनी विपत्तियों से भिड़ पड़ते ? प्रह्लाद और अभिमन्यु की तरह !

मनुष्य—तुम बड़े अच्छे बालक हो, सचमुच ? पर बालक ही तो हो, तुममें सहानुभूति और वीरता है। पर तुम्हें कुछ पता भी हैकि यहाँ इस प्रपंचपूर्ण संसार में हमारे धर्म और हमारे समाज में कैसी भयानक चक्की चला करती है। तुम्हें कुछ पता भी है कि कितने व्यक्तियों के मुंह के कौर इस समाज के अध्यक्ष हंसते हंसते छीन लेते हैं। तुम्हें कुछ पता भी है कितनी जौंके यहाँ इस समाज में जर्जरित मनुष्य की सूखी देह पर चिपटी हुई है, वे उसके शरीर का खून तो चूस ही चुकी हैं अब हड्डी की मज्जा भी चूसने लगी हैं। पर तुमने अभी देखा ही क्या है।

[कुछ उग्र होकर कुछ रुकने के बादएक एक हाथदोनों का पकड़ कर] बोलो, देखोगे अपनी समाज की उस वीभत्स नृशंसता को, बोलो साहस करोगे उसके समक्ष ताल ठोकने का। तो चलो मैं भी अपने प्राण सुरक्षित रख लूंगा। इस समाज में जीवन रहने योग्य ही नहीं रह गया, पर तुम भी उसे समझ लो। आओ आओ, [दोनों को खींचकरधीरे धीरे वह साथ ले जाता है। नैपथ्य में भूमिका की भांति एक संगीत आता रहता है—]

जीवन में विष; विषमय जीवन

जीने की होगी चाह किसे ?

अंगार बिछे हों, काँटे हों

भायेगी ऐसी राह किसे ?

॥ पटाक्षेप ॥

: ३ :

(एक सभा-मंडप । पाँच महापुरुष पांच पीठों पर । उनके पीछे कागज-पत्र खोले कुछ ऊंघते से, कभी सुंघनी सूंघते हुये, कभी कुछ पढ़ते हुए, पान चबाते हुए, अथवा बालों में कंघी करते हुये, कभी आंखों में सुरमा करते हुये जिनके दाढ़ी हैं ये दाढ़ी सुर-सुराते हुये, कभी मुस्कराते, कभी मलीन होते, पांच साहित्यिक भूमि पर बैठे हैं । पीछे की दीवाल पर सबसे ऊपर अत्यन्त मोटे अक्षरों में एक तख्ती पर लिखा है " सृष्टि संघ ")

(पर्दा उठने पर पहले स्टेज पर अन्धकार है । एक क्षण अन्धकार के बाद एक प्रकाश-रेखा पहले तख्ती पर पड़ती है । पढ़ मिलता है— "सृष्टि संघ" । यही प्रकाश कुछ नीचे उतारता है । यहां एक तख्ती पर लिखा है— "केवल सदस्यों के लिये" अब वाद्य को एक मन्द ध्वनि होती है फिर संगीत का स्वर सुन पड़ता है । धीरे धीरे प्रकाश भी बढ़ने लगता है—

चल चपल तरंगित दिवा,

विभा से भरदे नभ का कोना ।

यह रात

दीप की माला

झिलमिल झिलमिल

चल चमक नृत्य की लहक, गमक से भरदे जग का कोना।

जो होना है सो होगा।

(गीत समाप्त होते होते स्टेज पूरी जगमगाने लगती है। एक दम स्तब्धता)

एक—(खड़ा होकर) मेरा नाम ? जी, मेरा नाम नीतिनन्द।

दूसरा—मेरा नाम ? जी, मेरा नाम समाजशिव।

तीसरा—मेरा नाम ? जी, मेरा नाम धर्मेश।

चौथा—मेरा नाम ? मेरा नाम ? जी, कौटिल्य...न... भूला। ओ.......... यह नाम तो मेरे इस साहित्यिक का है। (साहित्य की ओर संकेत करके लज्जा को टालने के लिए हँसता हुआ।) हः हः क्यों न ? मेरा नाम ? जी, हः हः, मेरा नाम संपन्निराय, हः हः हमें नाम से क्या ? काम होना चाहिए जी। है कै नांय कौटिल्य जी।

पांचवाँ—मेरा नाम जी मेरा नाम सभी जानते हैं विश्वमित्र

धर्मेश—देखिये, पहिले तो हमने यह मान लिया है कि सुख सुविधायें हम सब लोगों को पहिले मिलनी चाहिये। सृष्टि

में जो वैभव है, यह यदि सब में बांट दिया जायगा तो हमारी महाभिलाषायें और महत्वाकांक्षायें पूरी नहीं हो सकेंगी।

संपतिराय—इसमें कोई सन्देह नहीं। मैंने इन सब बातों की भली प्रकार परीक्षा करली है। सृष्टि में हमारी शक्ल सूरत के प्राणी बढ़ते जा रहे हैं। भारत में जहां पहले तेतीस करोड़ थे, अब चालीस करोड़ होगये हैं।

नीतिनन्द—वास्तव में स्थिति अत्यन्त भयानक है, पर हमें आज युग युग से चले आने वाले उद्देश्य पर कोई विचार नहीं करना है।

[एक पटाखे की आवाज होती है, सब चौंक पड़ते हैं। एक युवक बड़ी तेजी के साथ प्रवेश करता है। पीछे पीछे एक द्वारपाल भागा आ रहा है, और कहता है, 'तुम सदस्य नही हो, 'यहां नहीं आ सकते। तुम्हें भय नहीं लगता।']

विश्वामित्र—(कड़क कर) वहीं रुक जाओ। जानते हो, तुम्हें यहां आने का अधिकार नहीं। बर्बर युवको! इस मुष्टिका को देखते हो, [दांत पीस कर] यह तुम्हारी खोपड़ी की हड्डियों को चूर कर देगी।

युवक—[अट्टहास कर उठता है, एक बार सब सदस्य चौंक जाते हैं—साहित्यिक तो कान बन्द कर सिर पृथ्वी पर टेक कर सिकुड़ जाते हैं] विश्वामित्र! अब धोखे में मत रहना। मैं तुमको चेतावनी देने आया हूँ। आपका संघ मानव के लिये अभिशाप है। आपने अपने षड़यन्त्र की चक्की में उसके हाड़ मांस-मज्जा सब को पीस डाला है और गिद्धों की भांति मनुष्य की चिता पर काँव काँव कर आपने अपना प्रीतिभोज किया है, पर अब और न हो सकेगा। मैं तुम्हारी इस दुरभिसंधि को तोड़ कर चकनाचूर कर दूंगा। सावधान! मैं तेज ग्रहण करने

जा रहा हूँ। तुम्हारे चक्र से यमुना में मरते मरते बचकर अब अमर होगया हूँ, समझे। विश्वामित्र तुम्हारा बल, संपत्तिराय तुम्हारा अर्थ, नीतिनंद तुम्हारी नीति, धर्मेश! ओ पाखंडी धर्मेश तुम्हारा धर्म और समाजशिव तुम्हारा नृशंस समाज-चक्र मेरे शक्ति तेज के आगे विचलित हो जायगा। विसर्जित होकर भू लुण्ठित हो जायगा। और तब मानव नया प्राण पायेगा। चेतो, चेत सकते हो, तो चेतो, नहीं तो उधर देखो तांडव गान हो रहा है, पृथ्वी पर महासमर छिड़ रहा है। सुनो, इस गान को, [एक दम धड़ाके की ध्वनि होती है, एक विकराल ध्वनि से नैपथ्य में वह युवक चला जाता है] संगीत हो उठता है।

आँ......

डिम डिमिक डिडिम डि डि डि डी डी,
जल सर्वनाश की ज्वाला।

विश्वामित्र—[चीख कर] चुप रहो, [एक दम फिर स्तब्धता]

समाजशिव—इसे यमुना में डूबने से किसने बचाया? मैं देख रहा हूँ कि समाज में कुछ विकार उत्पन्न होगया है, यह युवक कहीं शक्ति संचित न करले।

संपतिराय—भय की बात तो है पर हम लोगों को अपनी सत्ता के लिये और उसे बनाये रखने के लिये सब कुछ करना होगा।

विश्वामित्र—मैं इस युवक को भिनगे की भांति मसल डालूंगा।

नीतिनन्द—हां तो, हम लोग आज यहां एकत्र हुए हैं, वस्तुतः अपनी शक्तियों की समीक्षा करने के लिए। हम सब

लोग अपना अपना रहस्य यहां प्रगट करदें, जिससे परस्पर योग्य परामर्श मिल सके।

धर्मेश—अच्छा हो, हम अपनी करतूतों के कुछ दृष्टान्त प्रत्यक्ष दिखला दें।

समाजशिव—ठीक चलिए, आप ही दिखाइये।

धर्मेश—देखिये मेरे साहित्यिक मित्र इन व्यासजी ने [अपने पास भूमि पर बैठे हुए पुरुष की ओर संकेत कर के] इन्होंने वेद, उपनिषद् आदि लिखकर मनुष्यों में जो धर्मबुद्धि उत्पन्न की और उन्हें जड़ बनाया, उसकी कथा नहीं कहना है! मैंने तो अश्वमेध की भांति तब नरमेध का प्रचलन भी किया था। तब की शुनःशेय की कथा विश्वामित्र महोदय भली भांति जानते हैं।

विश्वामित्र—हां, भाई, तब मैं ऐसा ही था, क्यों लज्जित करते हो।

धर्मेश—कोई बात नहीं पर देखो जैसा इस युवक के हृदय में विद्रोह उत्पन्न हुआ था, ऐसा ही उत्पन्न हुआ, गौतम नाम के व्यक्ति के। राजा का पुत्र था वह। देखो वह क्या करने लगा था? आओ उठो, वह देखो अतीत के अन्धकार-गर्भ में राज द्वार के बाहर खड़ा है वह, और उसके पास है उसका सेवक।

(पर्दा गिरता है, मार्ग। राजसी वेष में सिद्धार्थ और साथ में उसका सेवक)

सिद्धार्थ—छन्दक! मेरे हृदय की व्यथा को समझो। वह जसे खून के आंसू रो रहा है। तुम मेरे प्यारे सेवक हो। मैं

तुम्हारा राजा हूँ तुम समझते होगे, मैं जाने क्या हूँ। पर मेरे प्यारे चन्दक ! जैसे तुम पैदा हुए, मैं भी हुआ। तुम जवान हुए, मैं भी युवक हूँ। तुम बूढ़े हो रहे हो, देखो बूढ़े हो रहे हो और एक दिन मैं भी बूढ़ा हो जाऊँगा। बोलो इस सृष्टि में कहीं दु:ख का छोर है ? मैं तुम्हारा राजा तुम्हें बूढ़ा होने से नहीं रोक सका। मैंने तुम्हारा क्या कल्याण किया है ? मैं अब वहीं रहने जा रहा हूँ। मैं अब वह वस्तु खोज कर दूंगा कि तुम धन्य हो जाओगे। मानव कल्याण का द्वार खुल उठेगा।

छन्दक—स्वामी ! आप क्या कह रहे हैं ? मैं नही समझ रहा। आपके यहां रहने से हमारा सब प्रकार से कल्याण है। स्वामी ! आप हमें छोड़कर इस रात मे यों......।

सिद्धार्थ—भूल करते हो छन्दक। इस राजप्रासाद में वह तत्व नहीं मिल सकता। तुम्हारा वास्तविक कल्याण तुम नहीं समझ पा रहे हो। बुढ़ापे के बाद यह जो मृत्यु आयेगी उसका कितना भय व्याप्त है, मैं उसी का मार्ग शोधने जा रहा हूँ। लो तुम्हें तुम्हारी अब तक की सेवा का पुरस्कार देकर जाऊँगा। लो, [सिर से मुकुट उतार कर] यह मेरा मुकुट है। कितने रत्न हैं इसमें। इस मुकुट ने मेरे मस्तिष्क को स्वच्छ स्वतंत्र वायु का स्पर्श ही नहीं करने दिया था। मैं इसे सदा के लिये त्यागता हूँ। लाओ तुम अपनी पगड़ी दो।

छन्दक—पगड़ी। स्वामी मुझे मुकुट नहीं चाहिये। मुझे इसके रत्न भी नहीं चाहिये। यह आप क्या कर रहे हैं। मै आपका सेवक हूँ। मेरी भी बात सुन लीजिए, स्वामी !

सिद्धार्थ—भैया छन्दक, मुकुट उतर गया, जैसे सुबुद्धि आ

गयीं। मैं अब तुम्हारा स्वामी नहीं रहा। छन्दक विघ्न मत डालो मैं महापथ का महायात्री बन चला हूँ। यह लो, मेरे हृदय को और वक्ष को ये विविध जड़हार कैसे दबाए हुए थे। उसका भावमय स्पंदन तुम और तुम जैसे अन्य मानवों तक कहां पहुँच पाता था। वह हृदय से उठ कर इन जड़ मोतियों से टकरा कर मर जाता था। आह, देखो, अब यह मानव हित के लिये कैसा उछल रहा है और छन्दक मेरे हृदय के आज के उल्लास को क्या तू समझ सकेगा?

छन्दक—स्वामी! यह आप कैसी अनहोनी बातें कर रहे हैं। मैं क्या कोई स्वप्न देख रहा हूँ? एक युवराज राज्य से इस प्रकार विरक्त हो।

सिद्धार्थ—छन्दक! स्वप्न नहीं देख रहे हो। अब तक स्वप्न देख रहे थे। मैं भी अब तक स्वप्न के संसार में था। ओह, इन जड़ परिधानों में हमारी दृष्टि को आवृत और विषाक्त कर देने की कितनी सामर्थ्य है। चैतन्य इनसे घिरकर अपने वास्तविक स्वरूप को भूल जाता है। छन्दक! मैं भूला हुआ नहीं था क्या? मैं युवराज हूँ, मनुष्य नहीं हूँ। लो, मैं इन वस्त्रों को कदापि ग्रहण नहीं करूंगा। ये तुम्हारे हुए, तुम मुझे अपने वस्त्र दो। दो! अरे तुम रोने लगे छन्दक।

छन्दक—स्वामी ···भी····· अरे·····मैं·····अभागाप ···

सिद्धार्थ—नहीं आंसू मत डालो आंसुओं का जल मानव के संकल्पों की जड़ में प्रवेश कर जाता है और उसकी दृढ़ता को हिला देता है। इन्हीं के डर से छन्दक तुम नहीं जानते यशोधरा

सम्पतिराय—ठीक, पर हाथ से सब कुछ निकल जाने पर वह दुखी हो अपने प्राण छोड़दे, अपघात कर ले तो ?

धर्मेश—तो मैंने ईश्वर की सृष्टि कर रक्खी है और साहित्यकार को आदेश दे रखा है कि उसका उचित प्रोपेगेण्डा करे। फिर भाग्य का भी विधान मैंने किया है। हाँ व्यास जी इस सम्बन्ध में क्या किया गया है ?

व्यास—यही तो वस्तु है जिससे सृष्टि का समस्त साहित्य भरा पड़ा है। बड़े बड़े महात्माओं की रचनाओं में से अनेकों सूक्तियाँ निकाल निकाल कर मानवों की जीभ पर चढ़वा दी हैं।

संपतिराय—जैसे।

व्यास जैसे किसी का धन चोरी चला गया, किसी की मृत्यु हो गई, कोई रोने लगा तो उस से कहा जाता है—

कर्म प्रधान विश्व करि राखा।
जो जस करहि सो तस फल चाखा॥

फिर !

होइहै वही जो राम रचि राखा।
को करि तर्क बढ़ावहि साखा॥

और !

हानि, लाभ, जीवन, मरण, यश, अपयश, विधि हाथ।

नीतिनन्द—बहुत सुन्दर, बहुत सुन्दर। इससे आगे फिर कोई कहां जायगा ?

समाजशित्र—देखिऐ, देखिऐ, यह क्या तमाशा हो रहा है।

(सब आश्चर्य में पड़कर धीरे धीरे स्टेज से हट जाते हैं।)

पर्दा उठता है।

(खेल का मैदान, चार बालक गाते हुए आते हैं।)

आओ खेलें हम,
आओ कूदें हम,
आओ गायें हम, मधु मय गाना...गाना...गाना...गाना।
संगीछध्वं सम्वदध्वं,
सब भाई हम,
आओ खेलें हम,
आओ कूदें हम,
आओ गायें हम,
हिलमिल हिलमिल,

एक—तो भाई क्या खेल खेला जाय ?

दूसरा—हाँ, सोचो कोई बढ़िया खेल खेला जाय !

तीसरा—ऐसा खेल हो कि हम खेलते ही चले जायें ?

चौथा—ठीक है, आखिर हम खेल ही तो खेलने आये हैं ?

(एक काली छाया सी आकृति प्रकट होती है।)

एक—पर देखो यह कौन है ?

दूसरा—अरे बापरे ! कैसा डरावना है ?

तीसरा—सचमुच भाई यह कौन है, पूछो इनसे ?

चौथा—कौन पूछे ? (एक की ओर संकेत करके) हममें तुम्हीं चतुर हो, तुम्हीं पूछो ।

एक—तुम सब डरते हो, लो मैं ही जाता हूँ, वह मुझे बुला रहा है !

[वह आकृत्ति के पास जाता है, तीनों मन बहलाने को मन्द ध्वनि से उसी गाने को गाते हैं—]

आओ खेले हम, आओ कूदें हम ।]

आकृत्ति—(एक से) तुम जानते हो, तुम कौन हो ?

एक—(आश्चर्य में पड़कर) क्या मतलब ? मैं कौन हूँ ?

आकृत्ति—अरे तुम्हें इतना भी ज्ञान नही है ?

एक—ज्ञान ? क्या ज्ञान ? हाँ मुझमें ज्ञान कहाँ है ? आप ज्ञान दीजिए ? आप कितने बड़े कितने महान हैं, दीजिए न मुझे ज्ञान दीजिए ।

आकृत्ति—देखो तुम ब्राह्मण हो ।

एक—मैं ब्राह्मण हूँ, ब्राह्मण (पहले दुखी होता है, फिर एक दम प्रसन्न होकर ताली बजाता हुआ) बहुत अच्छा, बहुत अच्छा, मैं ब्राह्मण हूँ ।

(दूसरा भाग कर आता है)

दूसरा—और मैं कौन हूँ ?

आकृत्ति—तुम, तुम क्षत्रिय हो।

दूसरा—क्षत्रिय, ब्राह्मण नहीं ?

आकृत्ति—नहीं क्षत्रिय।

दूसरा—तो क्षत्रिय ही सही।

तीसरा—अच्छा मैं कौन हूँ ?

आकृत्ति—तुम, अरे, साफ तो है, तुम वैश्य हो ?

तीसरा—वैश्य क्या ?

दूसरा—वैश्य क्या ? वैश्य हो तुम और क्या ?

चौथा—फिर मैं ?

आकृत्ति—तुम तो शूद्र हो।

चौथा—शूद्र ?

आकृत्ति—हाँ,

चौथा—अच्छा यही सही।

[चारों एक दूसरे को आश्चर्य में पड़कर देखते हैं आकृत्ति लुप्त हो जाती है]

तीसरा—ओ, मैं तो भूल गया मैं कौन हूँ ?

एक—पूछो, इन्हीं से पूछो, अरे ! यह तो अन्तर्ध्यान हो गये। कोई देवता सा था।

दूसरा—देवता ही तो था, नहीं इतना ज्ञान हमारे पास कहाँ था ?

एक—अरे हम कैसे मूर्ख हैं !

तीसरा—क्यों ?

चौथा—क्यों ?

एक—लो, वह हमें कितनी बड़ी बात बता गया। हमें ज्ञान दे गया। मगर हमने उसकी पूजा भी नहीं की।

चौथा—इसका कोई नाम तो रक्खो। नहीं तो पूजा कैसे होगी ?

तीसरा—कौन रक्खे नाम ?

एक—देखो मैं बताऊं। इसे ज्ञानदेव कहें।

सब—वाह भाई, बहुत अच्छा नाम रहा। (पीठ ठोकते हैं और गाते हैं)

आओ ईश्वर के गुण गायें हम।
सब उसको शीश झुकायें हम।

एक—तो अब खेल खेलें।

दूसरा—पहले यह बताओ तुम कौन हो ?

एक—मैं ? मैं ? अरे हाँ, ब्राह्मण।

चौथा—यार कहीं इस ज्ञान को भूल न जायें, याद करने का ढंग निकालो।

एक—मैं एक ब्राह्मण हूँ, तुम क्षत्रिय हो, तुम वैश्य हो और तुम शूद्र।

दूसरा—मैं क्षत्रिय हूँ, तुम ब्राह्मण हो, तुम वैश्य और तुम शूद्र,

तीसरा—तुम ब्राह्मण हो, तुम क्षत्रिय हो, मैं वैश्य और तुम शूद्र,

चौथा—तुम ब्राह्मण हो, तुम क्षत्रिय हो, तुम वैश्य और मैं···(चुप हो जाता है।)

तीनों—शूद्र।

एक—आओ तो यह खेल खेलें।

आओ खेलें हम (आओ कूदें हम) (चले जाते हैं।)

(ब्राह्मण देवता घवड़ाये हुये हड़बड़ी में चले आ रहे हैं। उनके पीछे है हाथ में झाड़ू लिये शूद्र)

ब्राह्मण—दूर दूर, अबे ओ शूद्र के बच्चे दूर रह, छू लेगा मुझे क्या ? अपनी औकात से बाहर मत निकल।

शूद्र—माई बाप।

ब्राह्मण—माई बाप माई बाप, जानता नहीं। ब्राह्मण ब्रह्म के मुख से पैदा हुये हैं। जानता नहीं। लगा रक्खी है कांय कांय, झाड़ू, ऐसे लगती होगी। सफाई इसे कहते हैं, सिर पर चढ़ गया है।

(एक क्षत्रिय का प्रवेश)

क्षत्रिय—मैं चखाता हूँ इसे मजा (खींच के एक लात

देता है) क्यों हम लोगों का माल खा-खा के चर्बी चढ़ गयी है। बदमाश किस होश में है। चमड़ी उधरवा लूंगा चमड़ी।

(एक वैश्य का लबड़ धबड़ प्रवेश)

वैश्य—हाँ, ठाकुर एक और लगे। दो तो शाले में। एक और लात, ऐसे झाड़ता है कि धूल सारी मिठाइयों पर जा पड़ी। उनका दाम, एक भी नहीं बिकी। बदमाश !

क्षत्रिय—क्यों बे (एक लात और मारता है)

शूद्र—मर गया, अरे, मर गया रे, ईश्वर !

ब्राह्मण—ईश्वर, अब ईश्वर का नाम लेता है।

कर्म प्रधान विश्व रचि राखा,
जो जस करहि सो तस फल चाखा।
भाग यहाँ से ।

शूद्र-हाय ! आह सत्यानाश हो इनका। (शूद्र चला जाता है)

वैश्य—क्या कहा ? अबके तो कहना ! नाश हो ? शाला अबके कहे तो जमीन में गाड़ दूँ।

क्षत्रिय—लालाजी !

वैश्य-(जरा घबड़ा कर) जी ठाकुर साहब।

क्षत्रिय—हुँ ! ठाकुर साहब ! पहले क्या कहा था ?

वैश्य—मैंने ! नहीं अन्नदाता, माई बाप मैंने कुछ नहीं कहा था ?

क्षत्रिय—तुम बड़े धूर्त हो, तुमने परसों डाँड़ी मार ली थी।

वैश्य—नहीं जी कौन शाला कहता है? मैं कभी डाँड़ी...

क्षत्रिय—(तलवार निकाल कर पगड़ी से छुलाता हुआ) झूंठ झूंठ।

वैश्य—(कांपता हुआ) नहीं, नहीं, हाँ हाँ, थोड़ी।

क्षत्रिय—(क्रोध से) तो क्यों डाँड़ी मारी?

ब्राह्मण—सिर काट लो ठाकुर! इस बनिये का। सिर काट लो। बदमाश ने पाँच रुपये देकर मुझसे पच्चीस रुपये वसूल किए, ब्राह्मणों तक का लिहाज नहीं।

क्षत्रिय—(और भी क्रोध से पगड़ी तलवार की नोक से फेंकता हुआ) यह मैं क्या सुन रहा हूँ, सेठजी। भूल में पड़ रहे ह क्या? अभी सिर धड़ से अलग कर दूंगा।

वैश्य—कर दो, कर दो, अकेला हूँ न, कर दो। सिर धड़ से अलग।

क्षत्रिय—चुप रहो, भाग जाओ यहाँ से।

(वैश्य भाग जाता है)

ब्राह्मण—बहुत अच्छा किया। यह सब को ठगता है।

क्षत्रिय—और आप तो जैसे बड़े भोले हैं पंडित जी।

ब्राह्मण—पंडत कहता है वे! बोलने का शऊर नहीं, ब्राह्मण ब्रह्मा के मुख से पैदा हुये है, चला है वहाँ से।

क्षत्रिय—और आप जो ठाकुर ठाकुर चिल्ला रहे थे?

ब्राह्मण—अरे कसी धोखे में मत रहना, मंत्र पढ़के शाप दे दिया तो अन्टाचित्त हो जाओगे।

क्षत्रिय—बड़े देखे हैं शाप देने वाले।

ब्राह्मण—अरे शाप क्या तुझे तो चपत मार के ही ठीक कर दूंगा, ब्राह्मण हूँ परशुराम का वंशज (ताड़से एक चपत जमाता है।)

क्षत्रिय—हूँ, राम का वंशज हूँ ! बोटी बोटी काट डालूंगा। समझा क्या है तैंने (ब्राह्मण को भूमि पर दे मारता है और तलवार निकाल कर चढ़ बैठता है

(दो बालक दोनों ओर से)

दोनों—अरे नहीं, अरे नहीं।

क्षत्रिय—उठकर, मार डालता अभी, बामन कहीं का।

ब्राह्मण—अरे जा।

(एक ब्रह्मचारी का प्रवेश)

ब्रह्मचारी—नहीं नहीं, अरे, तुम मनुष्य होकर मनुष्य को मारते हो।

क्षत्रिय—मनुष्य !

ब्राह्मण—(क्षत्रिय को देखकर) मनुष्य ! अरे तेरे मेरी सी नाक है ?

क्षत्रिय—अरे हाँ है तो।

ब्राह्मण—मुख।

क्षत्रिय—यह भी है।

ब्राह्मण—और आँख, सिर, हाथ, पाँव, बगलें।

क्षत्रिय—अरे, ये तो सब हैं भाई !

ब्राह्मण—भाग जाओ, बड़ी भूल हुई। (भाग जाते हैं)

दोनों बालक—(गाते हैं)

आओ खेलें हम,

आओ कूदें हम।

(दो बालक और आ जाते हैं)

चारों—आओ खेलें हम।

एक—मैं ब्राह्मण हूँ।

दूसरा—मैं क्षत्रिय हूँ।

तीसरा—मैं वैश्य।

चौथा—और मैं शूद्र।

चौथे से तीनों—तुम दूर रहो, अछूत हो, तुम।

(आकृति का पुनः प्रवेश चौथा आकृति के पास भाग कर जाता है।)

शूद्र—हे ज्ञानदेव ! हे ईश्वर ! ये तीनों मुझसे घृणा करते हैं, मुझे पीटते हैं, मुझे खाना नहीं देते। मैं इनके टुकड़ों पर, इनकी

जूंठन पर, बसर करता हूँ। मैं खेत-क्यार नहीं कर सकता, रहने के लिए सब अच्छी जगहें इन तीनों ने हड़प ली हैं। हारी बीमारी में भी हमारी कोई नहीं सुनता। हड्डी तोड़ मेहनत करता हूँ, तब ये लोग बड़ी कृपा पूर्वक मुझे दो बासी, सड़े कौर फेंक देते हैं, और यदि दुःख में मैं कभी आह भर निकलता हूँ तो भी चमड़ी उधेड़ दी जाती है। मेरे स्त्री बच्चों को अपमानित किया जाता है। आपका यह खेल ज्ञानदेव ! मेरे लिए अभिशाप बन गया है। ईश्वर !

आकृति—घबड़ाओ मत, तुम ईसाई बन जाओ। अब तुम शूद्र नहीं रहे, ईसाई हो।

चौथा—ईसाई।

आकृति—हाँ, ईसाई।

वैश्य—ज्ञानदेव ! मैं भी इस खेल से उकता गया हूँ। मैं कमाता हूँ, अन्न उत्पन्न करता हूँ, और ये दोनों मुझ से सब छीन ले जाते हैं। यह कर के नाम से और यह मेरा परलोक सुधारने का प्रलोभन देकर।

आकृति—तुम मुसलमान बन जाओ।

एक दो—फिर हम लोग क्या बनें ? हम तो भगवान आप के विशेष कृपा-पात्र हैं ?

आकृति—तुम ! तुम्हारा नाम हुआ हिन्दू।

(आकृति लुप्त हो जाती है)

चारों—आओ खेलें हम,

आओ कूदें हम।
हिन्दू, मुसलमान, ईसाई,
हैं हम चारों भाइ भाई।
खेलें मिलकर खेल भलाई।

मिलकर सब को गाना—
गाना, गाना, गाना

एक-दो—मन्दिर हम एक बनायेंगे।
तीन—मस्जिद की नींव जमायेंगे।
ईसाई—गिरजा में ही हम जायेंगे।

तब खेल बनेगा दीवाना...............

[प्रस्थान]

(सम्पतिराय का घबड़ाते हुए प्रवेश)

सम्पतिराय—अरे धर्मेश, अरे समाजशिव!

(धर्मेश तथा समाजशिव का प्रवेश)

धर्मेश—क्यों ? क्या बात हुई ?

समाजशिव—ऐसे क्यों घबड़ा रहे हो ?

सम्पतिराय—मैं कहता हूँ, क्या घबड़ाने की बात नहीं है; उस ब्रह्मचारी ने तपस्या करना आरम्भ कर दिया है, कच्ची उमर के लड़कों पर तो उसका बड़ा ही प्रभाव पड़ता है, कहीं वे सब हमारा षड्यन्त्र समझ गये तो ?

(नीतिनन्द और विश्वामित्र का प्रवेश)

नीतिनन्द—हां, कहे चलिये।

संपतिराय—हां, कहीं वे हमारा षड्यन्त्र समझ गये, और विद्रोह कर बैठे तो! वह बला का ब्रह्मचारी मेरे पीछे तो बुरी तरह पड़ा है।

विश्वामित्र—पड़ने भी दीजिए। हमने अच्छों-अच्छों को पछाड़ा है।

नीतिनन्द—आप तो विद्यार्थियों की बात कर रहे हैं, उनसे हम निश्चिन्त हैं। हमने अपने साहित्यकारों को आदेश दे रक्खा है कि वे प्रेम नाम की चीज पैदा कर दें, उसके पीछे उन्हें पागल करदें, उनका चरित्र भ्रष्ट करदें। चरित्र से ही तो बल होता है।

विश्वामित्र—बिलकुल ठीक बात है, ब्रह्मचर्य से ही बल बढ़ता है, उसी से चरित्र बनता है।

नीतिनन्द—हाँ तो पहिले तो प्रेम को जन्म दिया है, फिर भीमर्वा सदा में बड़े बड़े ख्याति प्राप्त लेखकों से यह प्रचार कराया है, कि ब्रह्मचर्य अप्राकृतिक है, उससे मनुष्य की शक्ति अविकसित रह जाती है, ब्रह्मचर्य हानिकारक है।

संपतिराय—इसका कुछ प्रभाव भी पड़ा है, यह ब्रह्मचारी···

नीतिनन्द—फैशन से औरतें तो बन जाती हैं, परी जैसी। उन्हें लिली लिली कह कर और उनके अंग प्रत्यगों के नग्न प्राय: हावों को देखकर युवक सब सिद्धान्त भूल जाते हैं, और मुँह में पानी भर कर कहते हैं—

धर्मेश—क्या कहते हैं?

नीतिनन्द—मेरी नाव चली रे—

मेरी नाव चली रे!
ना जानूँ किधर, ना जानूँ किधर आज मेरी नाव चली रे।
पिया के देश चली रे।

और फिर साहित्यकारों के शब्दों को दुहराता हुआ वह कहता है, 'हे प्रेयसि, तुम मेरे हृदय में बैठ गई हो, मेरा हृदय धू धू कर तुम्हारे लिए जल रहा है, आ जाओ मैं मरीजे इश्क तुम्हारे दीदार का भूखा मर रहा हूँ, प्यारी (दोनो हाथ फैलाकर) प्रिय अब अधिक न तरसाओ........

(सब खिलखिलाकर हँस पड़ते हैं)

सम्पतिराय—खूब।

नीतिनन्द—हाँ और फैशन से आदमी औरत जैसे बन जाते हैं. फिर आप समझ ही सकते हैं, चाय उन्हें गरम कर देती है, उत्तेजित कर देती है। उधर सिनेमा भेज दिया है, जिसमें रही प्रेम के तराने। तो निश्चिन्त रहिए, युवकों को इन चीजों में फुरसत ही नहीं मिलने की, वह उस ब्रह्मचारी की बात क्या सुनेंगे! हमारे विरुद्ध होने के लिये तो बहुत बल चाहिए।

विश्वामित्र—अरे, वह बल इनके पास कहाँ से आएगा?

नीतिनन्द—और सब से ऊपर इस बीसवीं सदी में मैंने एक नई चीज गढ़ी है।

धर्मेश—वह क्या?

नीतिनन्द—वह है प्रोफेसर। उसे मैंने कह रक्खा है कि युवकों को भड़कने मत दे। वह अपने लच्छेदार शब्दों में उन कवियों और नाटककारों की तारीफ करता है, जिनके नाटकों में प्रेम कहानियाँ भरी पड़ी हैं। संस्कृत को गँवारों की भाषा बताता है। और उसमें से भी कालिदास के शकुन्तला की ही प्रशंसा करता है फिर फैशन से रहता है, चाय नियम से पीता है, सिनेमा जाना उसका धर्म है, वह बड़े तीखे शब्दों में सीधे-सीधे आचरण और व्यवहारों की हँसी उड़ाता है। विद्यार्थी के लिये वह देवता स्वरूप है। बोलो विद्यार्थियों से तुम्हें अब भी भय है? विद्यार्थियों में वह बल आ ही नहीं सकता जो हमारी जड़ें हिला सकें।

समाजशिव—आओ! आओ! हुआ, देखो अभी वह तमाशा चल ही तो रहा है।

(सब हट जाते हैं, पर्दा खुलता है)

[एक अपटुडेट अपार्टमेण्ट। एक ओर शेविंग का सामान खुला पड़ा है, एक छोटी मेज पर बगल की ओर एक बड़ा आइना है, उसके नीचे तामचीनी का एक बड़ा ट्रे है, वहीं नल है और साबुन भी। एक ओर पलँग बिछा है, बीच में है टेबिल। इसके दोनों ओर दो घूमने वाली कुर्सियाँ पड़ी हैं गद्देदार। टेबिल पर चाय के प्याले औंधे पड़े हैं, जिससे प्रतीत होता है कि चाय पीयी जा चुकी है। दीवाल पर एक घड़ी टँगी है। एक प्रौढ़ शीशे के सामने खड़ा हुआ है। मुँह पर साबुन मल रहा है, और गुनगुना रहा है—

'मेरी नाव चली रे, मेरी नाव चली रे'

(एक नौकर आता है और मेज साफ कर जाता है)

नैपथ्य से—ओ शकर !

शंकर—These people know little manners. Devoid of etiquette. It is not yet warm and they are knocking here. I have read so much in such a big university of Malihabad, but I never met such rustics, crying शंकर शंकर Oh. the bugar is directly coming over to my bed-chamber. Who is to give them lesson ?" ओ...ह.......... भोला.....भोला।

[एक जेंटिलमैन भीतर घुस कर]

जेंटिलमैन—अरे क्यों भोला भोला चिल्लाता है शंकर ?

शंकर—(घूम कर देखता है। मुँह साबुन से सफेद, हाथ भी झागों से भरा हुआ है।)

जेंटिलमैन—वाह सब शकल...... ।

शंकर—आप हैं ! कम आन, [हाथ मिलाने के लिए आगे बढ़ता है, वह उछल कर पीछे हो जाता है)

शंकर—क्यों, यह क्या ?

जेंटिलमैन—लिल्लाह ! आपने मेरा साठ रुपये का सूट खराब कर दिया होता। अपने हाथों को तो......... ।

शंकर—[अपने हाथों को देखकर] आप से मिलने की खुशी में मैं तो सब भूल गया। मिस्टर अभी लो, अभी लो।

[जल्दी से हाथ-मुँह धोता है, तौलिया से मुँह साफ करता है। पास आकर हाथ आगे बढ़ाकर शेकहैंड करता हुआ, कुर्सी पर बिठा देता है और आप भी बैठ जाता है]

शंकर—हां अब सुनाइये।

जेंटिलमैन—मैं अब······

शंकर—अच्छा जरा ठहरिये। बैरा! चाय, दो कप। हाँ तो क्या फर्माया जनाबमन।

जे०—मैंने कहा—

शंकर—थोड़ा देखिये—मैं आपको एक चीज दिखाऊँ। आप भी कहेंगे कि कोई चीज है। न, न, न, न, [गुनगुनाता हुआ फुर्ती से उठता है, और अपनी चारपाई से एक फोटोफ्रेम उठा लेता है। उसे उलटा कर वहीं से चिल्लाता है।] मिस्टर, बोलो क्या है? बोलो।

जे०—[उठने की चेष्टा करता है] जनाब।

शंकर—जनाब बैठे रहिये। नहीं, नहीं, यह नहीं हो सकता, वहीं से बताइये, ओह यस, बोलो।

जे०—यह हकीम लुकमान का नुसखा।

शंकर—च, च, च, नहीं यह तस्वीर है। बोलो किसकी तस्वीर है। आप नहीं बता सकते जनाब। आपने छुईमुई खेल देखा है। उसमें वह जो रोमाण्टिक लेडी है, उसका चित्र है यह, देखिये।

[बड़ी चपलता से उसके पास आकर उसको वह चित्र देता है!]

जे०—वाकई।

शंकर—(उसके मुँह की ओर घूरता हुआ) अरे वाकई, वाकई क्या, वाकई ! क्या कहा। रहने दीजिये। आप क्या समझ सकेंगे इसकी व्यूटी के रोमाँच को।

जे०—मैं कहता तो……

शंकर—रहने भी दो यार, मैं कहता, मैं कहता ! मैं कहता हूँ, माफ कीजिए। आप मेरे मित्र हैं, बहुत घनिष्ठ। आप कहीं कुछ पढ़े भी हैं।

जे०—आगरा युनिवर्सिटी।

शंकर—मलीहाबाद के सामने आगरा युनिवर्सिटी।

जे०—देखिए जनाब ! मेरे आल्मा मेटर को कुछ कहेंगे !

शंकर—कहूँगा नहीं, उसने तुम जैसे ईडियट्स को……।

जे०—(बांह चढ़ा कर तैयार हो जाता है, तभी बैरा चाय लेकर आजाता है, चाय पी जाती है, दोनों चुप हो जाते हैं।)

जे०—जनाब ! यह कहाँ का मैब है कि आप ही आप बोलते चले गये।

शंकर—जिसके पास बोलने को होगा, वही तो बोलेगा। आपके पास कुछ है बोलने को तो बोलिए।

जे०—देखो दोस्त ! हम तुम एक गाँव के रहने वाले एक साथ खेले कूदे, आपस में हमें क्या इस तरह……।

शँकर—(उसके गले में हाथ डाल कर) You are very sweet my friend. तुमने किन दिनों की याद दिलायी। हम

तुम साथ साथ झूले भी तो हैं। बड़े सुहावने थे वे दिन। हमारी तुम्हारी दाँत काटी रोटी थी !

जे०—लाओ दोस्त, मन बड़ा मचल रहा है, एक बार आपस में जरा अच्छी तरह मिल तो लें।

शंकर—हाँ, हाँ, आओ।

(दोनों एक दूसरे को भुजाओं से भर लेते हैं)

शंकर— गुनगुनाता है)

माई फ्रेण्ड, माई फ्रेण्ड
हाऊ स्वीट यू आर हाऊ स्वीट

(नैपथ्य में—बाबूजी अखबार, और दो अखबार मेज पर आ पड़ते हैं। दोनों दोस्त भुज पाश ढीला कर देते हैं, और एक-एक अखबार उठा कर एक-एक कुर्सी पर बैठ जाते हैं। पहले स्टेज की ओर दोनों मुंह किये हुये हैं। फिर एक दूसरे की ओर पीठ करके बैठ जाते हैं।)

जे०—(पढ़ता है जोर से) Muslims be Muslims,

शंकर—A Timely Exortation to Hindus.

(दोनों अखबार रख कर उठ बैठते हैं)

शंकर—हिंदूज क्या ?

जे०—और मुस्लिमस् क्या ? अयं ! हाँ याद आया। क्यों उस ज्ञान के देवता ने बताया था न ?

शंकर—अरे कसे भूले हुये थे। तुम मुसलमान बनाये गये थे न ?

जे०—मैं मुसलमान ? श्रो सचमुच मैं मुसलमान बनाया गया था। मैं मुसलमान हूँ, काफिर तुमने मुझे परेशान कर रखा है। (छुरा निकाल कर) मैं एक-एक हिन्दू को मार कर इस दुनियाँ का दामन पाक करूंगा। बुत परस्तो !

शंकर—श्रो ! श्रो ! छुरा ! दोस्त।

जे०—नहीं, मजहब के सामने मैं दोस्ती कुछ नहीं समझता।

शंकर—यार हम तुम एक गाँव के रहने वाले हैं।

जे०—हो सकते हैं, मगर तुम हिन्दू हो।

शंकर—मैं हिन्दू हूँ।

जे०—हाँ, तुम हिन्दू हो। मैं मुसलमान हूँ। तुम मन्दिर में जाते हो, मैं मसजिद में। मैं हरगिज आज यह सुनहला मौका नहीं छोड़ सकता। एक काफिर को सफए हस्ती से मिटाकर मैं गाज़ी बनूंगा श्रोर मुझे सबाब मिलेगा। (छुरा मारना चाहता है)।

शंकर—अरे, तुम मुसलमान कहाँ हो ? देखो तो, न वह दाढ़ी, न वह मूंछ न तुर्की टोपी।

जे०—अरे, हाँ तो मैं अभी मुसलमान बन कर आता हूँ।

शंकर—ओह, इन म्लेच्छों के हाथों हिन्दू धर्म खतरे में है। मैं हिन्दू हूँ, प्रताप की सन्तान। जिन्होंने अकबर को नाकों चने चबवाये। मैं हिन्दू हूँ शिवा की सन्तान, जिन्होने मुगलों को छार छार कर दिया। मैं एक एक मुसलमान को जिन्दा चबा जाऊंगा। मुझे भारतीय हिन्दू संस्कृति की रक्षा करनी ही

पड़ेगी। ऐं क्या करूं ? फिर इन म्लेच्छों को मारने के लिए क्या चाहिये ? मैं बल पैदा करता हूँ।

(एक दो कपड़े उतार कर दो दंड करके) मालूम पड़ता है, बहुत बल आ गया। पुठ्ठों में दर्द होने लगा। जै महावीर बजरंगी। अब आने दो म्लेच्छों को।

अर्जुनस्य प्रतिज्ञे द्वे,
न दैन्यं न पलायनम।

मैं अर्जुन का वंशज हूँ। अर्जुन का गाँडीव……(कुछ सोचकर) अर्जुन का गाँडीव। भोला……भोला।

(भोला का प्रवेश)

भोला—सरकार।

शंकर—कोई तीर कमान है ?

भोला—लाया हुजूर। (चला जाता है)

शंकर—ठीक ही कहा है। हिन्दू धर्म खतरे में है। भारत क संस्कृति नष्ट हो जायगी। राम और कृष्ण का नाम लेने वाला नहीं रहेगा। नही ऐसा नहीं होगा।

(भोला तीर कमान लेकर आता है। बहुत मामूली सी कमान है, सरकंडे की तीर है।)

शंकर—लाओ, अब मार लिया बदमाशों को। हमारे मंदिर तोड़ डाले, हमारे ठाकुरजी का अपमान किया। हमारे भगवान् का ? धिकार धिक्कार है मुझे।

(तीर कमान को देख कर)

(शंकर तीर चलाता है, वह जमीन पर गिर पड़ता है)

शंकर—ओह, इससे कैसे काम चलेगा। वे ही अर्जुन वे ही बान! पर आज बेकार होगये हैं। ठहरो···भोला! बन्दूक है?

भोला—हुजूर बन्दूक कहाँ है?

शंकर—रिवाल्वर?

भोला—नहीं अन्नदाता।

शंकर—अरे इनका क्या हुआ?

भोला—सरकार ने इन्हें रखने पर रोक लगादी है।

शँकर—अच्छा अच्छा रहने दे। तो अब क्या करूं। भला अब धर्म का उद्धार कैसे होगा? धर्म का उद्धार होना ही चाहिये! (भोला चला जाता है)

कैसे हो, हे ईश्वर, हे परमात्मा, रक्षा करो, तुम्हारे गौ, ब्राह्मण दुःख में है।

गउयें रो रो करें पुकार कहाँ गये कष्ट मिटाने वालें।

सो आओ हे दीनबन्धो, आओ!

(भोला का प्रवेश तलवार लेकर)

भोला—सरकार, क्या इससे काम चल जायगा?

शंकर—(तलवार हाथ में लेते हुये, क्रोध करके) अरे यह तो उठती ही नहीं? तलवार पटक देता है और हांफने लगता

मजदूर--हाँ जनाब ! मुसलमान क्यों नहीं, मुसलमान ही तो हूँ।

मुसलमान--यही तो मैं कहता हूँ, देख यहाँ आ। ये हिन्दू काफिर होते हैं। इन लोगों ने हमारी रोटी छीन ली है।

मजदूर--नहीं तो हुजूर।

मुसलमान--ओ बे बुद्धू ! हिन्दुओं ने तेरी अक्ल खराब करदी है।

(नेपथ्य में, 'जय हनुमान बजरंगी')

मुसलमान--(मजदूर से) तू मेरे पास रह। देख यह हिन्दू आ रहा है। जोर से कहना-

'अल्ला हो अकबर'।

(एक त्रिशूल लिये, रामनामी दुपट्टा ओढ़े, शंकर का प्रवेश)

शंकर--जय हनुमानजी की, जय भारत माता की।

मुसलमान--अल्ला हो अकबर।

(शंकर रंगमंच के एक छोर पर प्रवेश करता है उधर से एक किसान का प्रवेश)

किसान--बाबूजी बाबूजी !

शंकर—अरे ठहरो! पहले यह बताओ तुम कौन हो ?

किसान--मैं कौन हूँ ? आप जानते तो हैं मैं किसान हूँ।

शंकर—धत्तेरे की, अरे किसान विसान नहीं, मैं पूछता हूँ, वैसे तू कौन है ?

किसान—वैसे तो मैं तुम्हारा घसीटा हूँ।

शंकर—घसीटा ! किसान ! अबे मूर्ख, मैं पूछता हूँ हिन्दू है या मुसलमान ?

किसान—हिन्दू हूँ हिन्दू।

शंकर—देख तो मेरे साथ आ, एक एक मुसलमान को मार कर भारतभूमि का उद्धार करना है, यह पावन देश इन म्लेच्छों ने पतित कर रक्खा है, आ मेरे साथ।

मुसलमान—ए, काफिर।

शंकर—ए, म्लेच्छ।

मुसलमान—काफिर तैयार होजा, आज तुझे कुफ्र का मजा चखाऊंगा।

शंकर—म्लेच्छ, आज मैं भारतभूमि को पवित्र कर दूंगा, इस राम और कृष्ण की पवित्र भूमि को तुमने अपावन कर दिया है।

मुसलमान—चुप। ले, खैर मना अपनी।

(बेलचा उठा कर उनकी गर्दन पर रखता है)

शंकर—ले (त्रिशूल उठा कर उसकी गर्दन पर रखता है।)

किसान—अरे...

(भाग जाता है।

मजदूर—अरे...

(भाग जाता है)

मुसलमान—बोल अभी भुट्टा सा सर उड़ाये देता हूँ, जानता नहीं मैं मुसलमान हूँ।

शंकर—देख अभी पेड़ सा काट कर गिराये देता हूँ, जानता नहीं मैं हिन्दू हूँ। तू मेरे घर में घुस आया है और हेकड़ी की बातें करता है।

मुसलमान—मैं घर में घुस आया सो घुस आया है, हिम्मत निकालने की ? जरा चीं चपड़ की तो बोलती भी बन्द हो जायगी बोलो अपने घर का आधा हिस्सा देते हो ?

शंकर—(त्रिशूल मसकता है) तू यों थोड़े ही मानेगा।

मुसलमान—(बेलचा मसकता है) आगया न जात पर।

शंकर—हूँ।

मुसलमान—हूँ।

(एक अद्भुत-वेष-धारी व्यक्ति का प्रवेश)

आगन्तुक—अबे हिंदू क्या त्रिसूल लेके चला है ? जरा और जोर लगा, करदे तो इसका सर अलग, यह तुझे काफिर कहता है, तेरी मूर्तियाँ तोड़ता है, गाय काटता है। जीता न रहे ये, शाबाश।

(मुसलमान की ओर जाकर)

आगन्तुक—शाबाश पठ्ठे ! अरे म्यां इसी बूते पर चले थे। ये हिंदू तुझे म्लेच्छ कहता है। तुझ से घृणा करता है। तुझे अपना पानी नहीं पिलाता। तेरी मस्जिद के आगे बाजा बजाता है। देख बदजात काफिर कहीं बच कर न निकल जाय। हाँ कस कर चला बेलचा।

आगन्तुक—(हिन्दू की ओर आकर) वाहरे ! अरे क्या माँ का दूध नहीं पिया है ? हाथ काँप क्यों रहा है ? दबाये जा। मुसलमान—में क्या दम है जो तेरा सामना करे। हां शाबाश।

(मुसलमान की ओर आकर)

हां, एक हुँकार मार कर कसदे बे। क्या शेख पठान पन सब भूल चला। इस हिन्दू की क्या बिसात है, थरथराता क्यों है ? एक जोर और लगाया नहीं कि बेड़ा पार है।

शंकर—हुं ! महावीर बजरंगी।

मुसलमान—हूँ ! अल्ला हो अकबर।

(आगन्तुक पीछे जाकर कमरे का सामान बटोर कर एक पोटली में बांध कर चलता हुआ।)

आगन्तुक—हां पट्ठे यों ही लड़ते रहना। ढीले मत पड़ना। अपजी माताओं का दूध मत लजाना। अपने पुरखाओं का कहीं नाम मत डुबो देना। लड़े चलो, लड़े चलो।

(प्रस्थान)

(दो बालकों का प्रवेश)

एक—अरे, यह क्या ?

दूसरा—अरे, यह क्या ?

(पटाखे की आवाज तेजी से ब्रह्मचारी का प्रवेश । हिन्दू और मुसलमान के हाथ से त्रिशूल और बेलचे गिर पड़ते हैं)

ब्रह्मचारी—अज्ञानियों ! यह क्या कर रहे हो, तुम मनुष्य हो ।

हिन्दू—मैं हिन्दू नहीं मनुष्य हूँ ?

मुसलमान—मैं मुसलमान नहीं मनुष्य हूँ ?

ब्रह्मचारी—हाँ तुम मनुष्य अवश्य हो ।

(प्रस्थान)

हिन्दू—मनुष्य !

मुसलमान—मनुष्य !

(दोनों आगे आ जाते हैं)

हिन्दू—देखूं भाई !

मुसलमान—मैं भी देखूं ।

हिन्दू—अच्छा जैसे यह तेरे नाक है, मेरे भी है क्या ?

(नाक पर उङ्गली रखता है)

मुसलमान—उठी तो है भई यह रही । (नाक पर उङ्गली रखता है ।)

हिन्दू—और यह कान ?

मुसलमान—ये रहे ।

हिन्दू—एक हैं या दो ?

मुसलमान—बिलकुल दो।

हिन्दू—ये आंखें ?

मुसलमान—ये रहीं।

हिन्दू—एक या दो ?

मुसलमान—दो।

हिंन्दू—ये बांह। [एक बांह पकड़ कर]

मुसलमान—यह है तो। [उसकी बांह पकड़ कर]

हिन्दू—यह दूसरी।

मुसलमान—यह दूसरी। [दूसरी बांह पकड़ता है]

दोनों—अरे ! हम तो भूल कर रहे थे।

माई फ्रैण्ड, ओह माई फ्रैण्ड

हाऊ स्वीट यू आर, हाऊ स्वीट ?

[दोनों भाग जाते हैं]

शंकर—ओह ! डीयरी

दोनों बालक—आओ खेलें हम।

आओ कूदें हम।

[दो बालक और आ जाते हैं].

भोंं—आओ खेलें हम ।

आओ कूदें हम ।

[पर्दा गिरता है]

स्थान—मार्ग

[तेजी से ब्रह्मचारी का प्रवेश, साथ में अर्जुन और कृष्ण]

ब्रह्म०—नहीं ! अर्जुन मैं इस षडयंत्र को नहीं सह सकता । जहाँ देखो वहीं मानव मानव का शोषण करने में प्रवृत्त है । मैं शक्ति संकलित कर मानव को शुद्ध मानव बनाऊँगा । इन षडयंत्र कारियों के दाँत तोड़ दूंगा । महायुद्ध आरम्भ हो ही गया है । उसमें यह शोषक जर्जरित सभ्यता भूमिसात हो जायगी । हो जाने दो इसे, तब तक मैं शक्ति संचित करता हूँ । फिर इसमें नये प्राण फूंक दूंगा । तुमने मुझे मरने से बचा कर अमर कर दिया है । तो मैं जाता हूँ । [वह जाने को तत्पर होता है ।]

अर्जुन कृष्ण—[गा उठते हैं]

उठ उठ मानव; चल बढ़ आगे,

नव जीवन आने वाला है ।

ऐ भूलुण्ठित कंकाल उठो,

ऐ शान्त भस्म के ज्वाल उठो ।

पीड़क पामर के काल उठो,
भकभका उठो, भकभका उठो।
मृतकों में जीवन जागे,
नव युग सरसाने वाला है ॥

[गाते गाते तीनों धीरे-धीरे चले जाते हैं]

संपतिराय—[पागलों की भांति प्रवेश करके] विश्वामित्र, विश्वामित्र ! धर्मेश, धर्मेश [ठोकर खाकर गिर पड़ता है] ओह अरे बचाओ रे ! [उठकर भयभीत सा] बचाओ, चीख कर विश्वामित्र !

(बिश्वामित्र का प्रवेश)

विश्वामित्र—संपतिराय ! अरे, बद्‌माश मत हो ।

(धर्मेश का प्रवेश)

धर्मेश—क्या है, क्या है ?
सँपति०—मेरी टाँग टूट गयी ।

(नीतिनन्द का प्रवेश)

नीतिनन्द—विश्वामित्र ! सचमुच अब कल्याण नहीं, अब नहीं ।

(समाजशिव का भयभीत होना)

समाजशिव—अरे, अरे, यह देखो यह भैरवगान फिर हो उठा । मेरे कान के पर्दे फटे जाते हैं। अरे कोई आओ, मेरा

हृदय विदीर्ण हुआ जा रहा है। सुनो यह गाना।

डि डि डि डि डि डिमि डिमिक

उठ उठ मानव चल पड़ आगे।

नव जीवन आने वाला है।

ए दानव दल अब भाग उठो,

मुर्दों से अब चीत्कार उठो,

मानव में जीवन जाग उठो,

जगमगा उठो लपलपा उठो,

जड़ता के बन्धन त्यागे।

यौवन रस भरने वाला है॥

(संगीत एक दम बन्द हो जाता है, अन्धकार, आकाश, में तारे चमकते दीखते हैं। फिर वे चंचल हो उठते हैं। एक दूसरे से टकरा टकरा कर गिरने लगते हैं)

विश्वामित्र—धिकार है ऐसे बल को।

(चारों ओर से आवाजें आती हैं धिक्कार है! धिकार है! धिकार है! धिकार है!)

धर्मेश—विश्वामित्र क्रोध करने से काम नहीं चलेगा इस ब्रह्मचारी को डिगाना पड़ेगा। जैसे हो वैसे। अपनी सारी शक्ति लगा कर यह देखना होगा कि यह शक्ति संचित न कर पायें। इसका ताण्डव आरम्भ न होने देना चाहिये। वह देखो वह संगीत अभी चल ही रही है।

डि डि डि डि डि डिमिक डिमिक,
उठ उठ मानव चल बढ़ आगे,
नव जीवन आने वाला है,
दीनों के घर से ज्वाल उठीं,
लपटें लपटें विकराल उठीं,
उठो धकधका उठो कौरव प्रचंड जन भागे।

[अग्नि की लपटें स्टेज पर दिखाई पड़ती हैं, नैपथ्य में से चीत्कारें सुनाई पड़ती हैं। धर्मेश !]

समाज शिव—लो ये लपटें चले चलो। [सब एक एक कर तेजी से जाते हैं]

संपतिराय—[लँगड़ाता हुआ] करुण स्वर से, विश्वामित्र अरे मुझे मत छोड़ो मुझे बचाओ।

(प्रस्थान)

(पर्दा उठता है)

(स्थान—एक काम्यवन)

[पुष्पों का धनुष लिये, कामदेव अत्यन्त विमोहक वेष, में वसंत पुष्पों में आच्छादित चपल वसंत हाथ में कोकिल का स्वर्ण सप्रकाश पिंजड़ा दूसरा हाथ कमल पुष्पवत्]

कामदेव—बसंत ! यही उस ब्रह्मचारी का मार्ग है। यही उसकी तपोभूमि है। हमें अपना कार्य यहीं करना है।

बसंत—अनंगदेव इस बार मेरा हृदय कुछ कांप सा रहा है। शिवजी ने तो तुम्हें ही भस्म किया था। अब मुझे आशंका है कि मैं भस्म हो जाऊँगा।

कामदेव—ऋतुराज ! क्षुद्रं हृदय दौर्बल्यं। भाई मैं भी तो तुम्हारे साथ ही हूँ। हमें अपना कर्तव्य तो करना हीं है। जब शिवजी की समाधि डिगादी तो यह तो मनुष्य ही है। और अभी शक्ति-संचित कर भी कहाँ पाया है।

वसंत—भूल मत करो पुष्पधन्वा ! मनुष्य तो शिव को बनाने वाला है। बताओ तुम्हें भस्म हो जाने पर भी किसने अमर रक्खा है ? शिव ने, तुम कहोगे। पर झूठ है। मानव ने ही सृष्टि के लिये तुम्हें बचा रक्खा है। पर इस से क्या ? जो करना है, वह किया ही जायगा। अच्छा कवि को भेजो, बिना उसके मेरे सौन्दर्य और रूप रंग की ओर मानव का ध्यान कैसे जायगा। उससे कहूँगा वह अपनी उन्मादक तान से उसे प्रमत्त बनादे। उसके मन में सौन्दर्य की चाह पैदा करदे। और तब मैं अपना प्रभाव जमाऊँगा।

(नेपथ्य में से एक कोमल संगीत आ रहा है)

(फुलबगिया में दुपहरी बिरमाइ लेउ)

कामदेव—ले ! कवि महोदय तो आ पहुँचे। [दोनों का प्रस्थान।]

[दृश्य फटता है, सम्पूर्ण दृश्य वसंतमय हो जाता है, बीच में एक स्वच्छ स्वेत चाँदनी बिछी है, उस पर एक चौकी पर सुरापात्र रखे हैं, रेशमी सुन्दर वसंती वेष में भावुक कवि]

कवि—वृद्ध जन को क्यों अखरती है भला मेरी जवानी।
[वसंत का प्रवेश] वसंत।

वसंत—कवि !

कवि—भला ! तुम अब आ गये।
सुखभरे सौरभ से सृष्टि पर छागये।

कवि—महक उठे हैं पुष्प
महक उठीं हैं दिशा

महक महक मन सब के लुभा गये—
आगये, वसन्त तुम आगये।
फूल उठे फूल,
रसशिक्त हुई मलयज ये
मृदुमय हो जैसे।
सृष्टि क न मुसका गये, आगये।
स्वर्णिम उषा का
स्वप्न हो उठा विभोर आज
कोकिल भी कूक उठी
रंग रंग भरके।
अणु अणु रोम रोम थिरक उठा है मँजु
मोदिनी में मधु स्वर रस बरसा गये, आगये।

[एक प्याला सुरा का पीकर] ले...

मूर्ख मानव ! देख, कैसा मनोहर बसन्त है ? एक प्याले से जैसे शरीर का अणु अणु प्रकाशमान हो उठा है, औ सृष्टि का सुख जैसे उसमें भरा जा रहा है !

एक बस एक ।
ले देख मानव ।
नाच रहे भौंरे मत्त कोकिल सुनाती गान
लिपट लिपट लतिकायें सुख पावतीं
मानव रे, आ जा तू विरम यहाँ कुछ छन
जीवन का ने घूंट मादक बना रहा

ब्रह्म०—कवि ' फूल का एक बाण ब्रह्मचारी के ऊपर होकर निकल जाता है

कवि—सृष्टि की इस मायाविनी सुन्दरता को देख । एक एक पुष्प किसी पुष्पवती रमणी की मादक दृष्टि का कटाक्ष बन रहा है । युवक ! सम्पूर्ण सृष्टि मुसका रही है ।

ब्रह्म०—कवि, [कुछ कठोर होकर]

कवि—भौंरे कैसे प्रमत्त हैं । ये भौंरे पुष्प पुष्प पर पराग पान कर रहे हैं । अरे मानव, इस मधुर वेला में तेरी प्रेयसी पुष्पहार लिये तेरी प्रतीक्षा में बैठी है ।

जा वसन्त मना [नैपथ्य की ओर से एक बाण ब्रह्मचारी के ऊपर होकर निकल जाता है]

ब्रह्म०—कवि, [कुछ उग्र स्वर से] [सुन्दर सुन्दर पुष्प ाकाश से ब्रह्मचारी पर बरसते हैं]

कवि— अरे मानव, ये पुष्प झर झर कर तेरा अभिनन्दन कर रहे हैं।

(कोकिल की कूक)

यह कूक तेरे प्राणों में मिठास भर रही है।

समस्त वसन्त सृष्टि कैसी अनुभूतिमयी हो रही है।

(सुरा-बालक घबराकर गिर पड़ता है, कवि कांप जाता है)

ब्रह्म०— [कठोर उग्रता के स्वर में] कवि।

कवि —अयं

ब्रह्म०—हट जाओ मेरे मार्ग से मेरा पथ अग्निपथ है। सुनते हो वह गान और देखते हो उधर।

(नैपथ्य में से डि डि डि डि डि गान के साथ ही स्टेज के एक अंश का परदा फट कर गिर जाता है, उसमें से एक रीछ निकल कर कवि की ओर दौड़ता है। कवि और सुरा बालक चीत्कार कर भाग जाते हैं, गान रुक जाता है।)

ब्रह्म०—मुझे आगे बढ़ते चला जाना होगा। यह वसन्त मुझ में तेज भर रहा है, शक्ति भर रहा है, प्रकृत वसन्त तुम अन्य हो।

(एक ओर पुष्पबाण ब्रह्मचारी के ऊपर होकर निकल जाता है, पर्दा फटता है, रत्नजटित सुन्दर वसन्त मम भूमि पर बाल नर्तकों का दल, अप्सराओं के बालक से हैं वे गाते-नाचते हैं।)

गायें गायें बसन्ती रे गान।
आपका शुभ स्वागत श्रीमान् ॥

लोनी लोनी लता
मदमदाती लता
लहराती लिपट लोनी लोनी लता ॥

ये फूल खिले
पीले पीले भले
लगते हैं गले
मन भाती कोयलिया की तान ॥

भीनी भीनी सुरभि
मन मोहक सुरभि
इठलाती चली भीनी भीनी सुरभि ॥

मन मादक बना
वह झूमें घना
मधु मद ये सना
विंध जाते रमैया के प्रश्न ॥

ब्रह्म०—ठहरो। मानव में मधुर कल्पनाओं का जाल मत फैलाओ। मैं शक्ति सचय के पथ पर बढ़ रहा हूँ। मेरे रोम रोम में बल की कल्पना जागृत करो। शक्ति उपासना का उदय करो। प्रकृति के रागात्मक तत्वों से अपनी इस प्रवंचना को दूर करो। प्रलोभन मत बनो। मुझे तो वह नृत्य चाहिये और वह

गान चाहिए, जो सृष्टि से शोषण को चकनाचूर करके अपने ताण्डव से मानव के विरुद्ध-शुद्ध मानव के विरुद्ध जो सदियों से षड़यन्त्र चला आ रहा है उसे विध्वंस कर दे, देखो मुझे तांडव चाहिए, वह गान और वह नृत्य। (पटाखे की आवाज के साथ पर्दा फट जाता है, वह रुद्र गान और ताण्डव नृत्य दिखाई पड़ता है । नर्तक बालक भाग जाते हैं)

ब्रह्म०—काम (काम विवश सा हुआ खिंचा चला जाता है) काम ! मेरे अग्निपथ में तुम भस्म होने के लिये ही आपड़े हो। एक बार भस्म होकर भी तुम्हारी कामना पूर्ण नहीं हुई। चले जाओ और युवकों को पथ भ्रष्ट करने के उद्योग से विरत हो जाओ उन्हें वीर्यवान बनने का प्रोत्साहन दो । जाओ, (काम भागता है) (उसके उत्तरीय में उठते हैं)।

ब्रह्म०—(दो पग आगे बढ़ाकर)

मैं यहीं उस शक्ति का उदय करूँगा । यहीं वह अग्नि प्रज्वलित करूँगा। यहीं से यौवन, शक्ति और मानव-कल्याण का स्रोत खुलेगा।

(पृथ्वी पर पदाघात करता है, पटाखे की आवाज होती है, एक पतले परदे के पीछे आग प्रज्वलित दिखाई पड़ती है रुद्र गान हो उठता है।)

डि, डि डि,
ओ ज्वाल ज्वाल तुम धधक उठो।
नर शोषक दल को भसक उठो ॥
मानव रे कलि को घसक उठो।

(झीने पर्दे में से एक काली आकृति घबड़ाई सी दिखाई पड़ती है, वह चीखती है) 'विश्वामित्र, विश्वामित्र !' ये ब्रह्मचारी मुझे आग में झोंके दे रहा है। आह .. (आग में कूद पड़ती है।

गीत फिर चल उठता है। झलझला उठे भल भला उठो)

(दूसरी आकृति आती है)

दूसरी आकृति—अरे, मुझे बचाओ, विश्वामित्र। तुम्हारा बल कहाँ गया ? (वह भी आग में कूद पड़ती है। संगीत फिर चल पड़ता है—सब कलुष मलिनता भागे)

(तीसरी आकृति घबड़ाई हुई)

आकृति—(चीखकर) मरा मरा, अरे मरा रे, विश्वामित्र।

(लड़खड़ाकर आग में गिर पड़ती है। संगीत चल पड़ता है)

नव यौवन आने वाला है

(चौथी आकृति)

आकृति—(चीखकर) अरे कैसे बचूँ, मेरा धर्म, मेरा पाखण्ड देखलो अरे, अरे। (गिर पड़ती है आग में।

नव जीवन आने वाला है

(पांचवीं आकृति का प्रवेश)

आकृति—(चीखकर) धर्मेश, (एक पग बढ़कर) समाजशिव ! (ऐक पग बढ़कर) नीतिनन्द ! (एक पग बढ़कर) संपतिराय ! ओह सब भस्म हो गये। कोई साथी नहीं रहा ओह, यह लपटें मेरी ओर आ रही हैं, मरा मरा। (भहराकर गिर पड़ता है)

(संगीत चल पड़ता है—उठ उठ मानव चल बढ़ आगे)

[एक और आकृति परदे पर दीखती है]

आकृति—सृष्टि के रसमय तत्व इस अग्नि में भस्मघात हो गये, मैं भी चलूँ।

ब्रह्म—कवि।

('पटाखे की आवाज के साथ पर्दा फट जाता है, अग्निकुण्ड की प्रज्वलित अग्नि स्पष्ट दीखती है, कवि घबड़ाया हुआ—सा हो जाता है।)

ब्रह्म—कवि, रुको, तुम्हारे पापों का प्रायश्चित्त अग्नि में भस्म होने से न होगा। भूले हुए कवि ! तू अपनी शक्ति का आवाहन कर, और ऐसा गीत गा कि मुझ में संचित शक्ति मानव मानव में व्याप्त हो जावे, ऐसा गीत गा कि ओजस्वी मानव उत्पन्न हो जायें, कामुक और लोलुप मनुष्य ने मानव को इस षडयंत्र का शिकार बनाया, ए कवि तू वह अनलगान गा कि युवक के रगरग में मानव के कल्याण की चिनगारी उठ पड़े, तू वह गाना गा कि मानव को मानव से पृथक करने वाली दीवालें ध्वस्त होकर गिर पड़ें, तू वह गान गा कि मानव में ज्योति जागृति हो उठे, वह अन्धकार में न भटके वसन्त ! वसन्त !

(पर्दा फटता है, वसन्त दर्शन होते हैं)

वसन्त—अब तू यहाँ अपना वैभव बखेर कि स्वस्थ मानव तुझसे बल ग्रहण करता हुआ अपनी मानवता के कल्याण में लगे।

(वसंत बंशी बजाता है, पीला प्रकाश पीले फूल बरस पड़ते हैं।)

(चार बालक गाते हुये प्रवेश करते हैं)

आओ खेलें हम, आओ कूदें हम, ...
मैं ब्राह्मण, मैं क्षत्रिय, मैं वैश्य, और मैं शूद्र,
हिंदू, मुसलमान, ईसाई, हैं सब चारों भाई भाई,

ब्रह्म—बस यह खेल समाप्त करो, मानव कल्याण को ज्योति जगाओ। आओ, यह नया ज्योति गीत गाओ—

(सब मिलकर गाते हैं)

आओ वह ज्योति जगायें हम।
नव नव प्रकाश की परम्परा,
जग में, मग में फैलायें हम।
युग युग का घिरता अन्धकार,
जड़ता, जीवन का विष विकार,
बन क्रान्तिदूत
बन ज्योति-पूत
ले नव-स्फूर्ति, जीवन विभूति,
इस जग में अब बिखरायें हम।
आओ वह ज्योति जगायें हम॥

※ पटाक्षेप ※

———